दो

•

गिरिराज किशोर

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली-११०००६ • पटना-८००००६

१

जिस औरत का जिक्र है, उसके बारे में लमतरानी हांकने के बजाय इतना ही कहना काफी होगा कि वह एक मुनहनी, बड़ी आँखों वाली, तेज-तर्रार, ऊँची जाति की एक छोटी औरत थी। उसका नाम नीमा था। नीमा नाम किसी सुरुचि का परिचय नही देता और न हिन्दू शास्त्रों में इस नाम की कोई पकड़ है। सिर्फ वह एक नीम के नीचे पैदा हुई थी और नीम की डाल से बँधे कपड़े के झूले में झूलने के लिए लटकी रहती थी। यह ममला कोई अनुसंधान का विषय नही। अब नीमा का एक काला और बदशक्ल बेटा है—रज्जन। वह खुद उतनी काली नही। अच्छा-खासा गदुमी रग है। बेटे की शक्ल जरूर भारतीय वाङ्मय के एक चरित्र से मिलती है। राम-भक्त हनुमान के अनुहार पर होने की वजह से उसकी शक्ल को 'क्लासिकल' माना जा सकता है। रज्जन नाम से शक्ल या गुणों का कोई खास अहसास नही होता।

जब वह साल-भर से ज्यादा का रहा होगा तो नीमा मास्टरनी के यहाँ खाना बनाया करती थी। रज्जन लाल टोपा ओढे और हगनी-मूतनी खुला पाजामा पहने निहायत बेपर्दगी के साथ नाक चाटता हुआ टाट पर बैठा रहता था और अपनी माँ की तरफ देखकर रोता रहता था। नीमा अपनी हद के अन्दर और जातीय गुण की वजह से मुँह बन्द करके तम्बाकू खाती रहती थी। उसका तम्बाकू खाना ही उसे साठ प्रतिशत सठ-साला बनाये हुए था। इसी वजह से कम उम्र के कारण मिलने वाला फायदा उसे नही मिल पाता था। इस बात का अहसास उसे बिल्कुल नही था। कराना भी मुश्किल था। नहीं-तो वह तम्बाकू खाने के बजाय उम्र का फायदा उठाने की स्थिति मे हो सकती थी।

तब उसका दूसरा आदमी मर चुका था। पहला आदमी जिन्दा था। पहले आदमी से भी एक लड़की थी। दूसरे आदमी के घर में बैठ जाने के कारण पहले आदमी से उसका कोई ताल्लुक नहीं रहा था। बेटी के लिए वह मरती रहती थी। दोनों ही आदमी उसकी जाति के थे। उसका दूसरा आदमी, जिसके घर वह बैठ गई थी, एक ढाबा चलाता था। उसे ढाबे से आमदनी थी। ढाबे में बारदाना काफी था। पहला आदमी एक छोटी-सी मठिया में, जिसे वह मन्दिर कहता था, पूजा-पाठ करता था और पुजापा लेता था। दिन में एक दुकान पर नौकरी करता था। पत्रा-पोथी भी देखता था। मोहल्ले की बूढ़ी औरतें एकादशी और पूर्णिमा के व्रत के बारे में पूछा करती थीं। नीमा पत्रा-पोथी और पुजापे को पसंद करने के संकट में तब भी थी। यहाँ तक कि जब वह पत्रा-पोथी के ज्ञान के बारे में बतोले उड़ाता था तो वह मुँह में तम्बाकू भर-कर थूकती नहीं थी। बस एक बार उसके हाँ-हूँ कुछ भी न करने पर जब उसने बहुत मारा था तो मुँह से पीक निकलकर आदमी के मुँह पर जा गिरी थी। वह यही समझा था कि नीमा ने जानकर किया है। और वह उसे मारता चला गया था।

दूसरे आदमी के साथ कुछ सालों उसने बहुत मौज-मजा किया था। वह ज्यादा उम्र का एक सीधा आदमी था। सीधेपन के वातावरण में औरतें ज्यादा खुलती हैं। उनकी जबान भी ज्यादा मुक्त होती है और नखरे उठाये जाने की भी गुंजायश रहती है। दूसरे आदमी के साथ वह काफी गुंजायश के साथ जिन्दगी गुज़ार सकी। इस तरह की जिन्दगी सुविधापूर्ण और सम्मानजनक थी। शाम का खाना भी वह बहुत कम घर में बनाती थी। उसका आदमी रोजाना शाम को अच्छे घी के परांठे ले आता था। उसके साथ बैठकर खाता था। कभी-कभी जब उसे सब्जी पसन्द नहीं आती थी तो वह थाली से उठाकर इस सहजता से फेंक देती थी जैसे बच्चे फेंक देते है। कभी-कभी नीमा की यह भूमिका एक पुराने और मालदार ग्राहक की-सी होती थी। उसका आदमी अच्छे दुकानदार की तरह उसकी खुशामद करता था। लेकिन नीमा की नाराजगी कम-से-कम रात-भर के लिए लागू हो जाती थी। फिर दोनों

में से कोई रात-भर खाना नहीं खा पाता था। उम्र की वजह से और अपने सीधेपन की वजह से वह रात-भर दुखी और परेशान रहता था। सवेरे ही सवेरे वह मौहल्ले की सबसे अच्छी दुकान से असली घी की जलेबी लाता था और दूध में भिगोकर खुशामद-दरामद के साथ नीमा को खिलाता था। तब कहीं वह अपने ढाबे जा पाता था।

ढाबे में वह काफ़ी दबंग और असरदार आदमी था। हर सब्ज़ी को चखकर देखता था। ख़राब होने पर सब्ज़ी बनाने वाले महाराज को डाँटता था। अगर ग्राहक भाग जायेंगे तो वह उनकी तनख्वाह कहाँ से देगा! ग्राहकों की ज़रूरत को वह समझता था। वे सब्ज़ी अच्छी चाहते है। रोटी तो किसी भी दुकान पर अच्छी मिल सकती है लेकिन होटलों और ढाबों में अच्छी सब्जियों का मिलना दुश्वार होता है। उसके ख्यालात मे इतना बदलाव शादी के बाद ही आया था। ढाबे में काम करने वाले आपस में इस तरह की बातें किया करते थे। पहले उसकी मान्यता बिल्कुल अलग थी। वह मानता था, आदमी के लिए पेट भरना ज़रूरी है। उसके लिए अच्छी सिकी रोटी ज़रूरी है। सब्जियाँ लगी-बँधी होती है।

मालिक के विचारो में इस परिवर्तन को देखकर ढाबे के कर्मचारियों ने यह तय कर लिया था कि खास तौर से वे शाम को अच्छी सब्जियाँ बनाया करेंगे। वे अपनी इस तरकीब में कामयाब भी हुए थे। ग्राहकों की संख्या बढ़ी थी और मालिक की नाराजगी की पुनरावृत्ति भी कम हो गई थी। कभी-कभी नीमा का संदेश दिन में आ जाता था कि उसके सिर में दर्द है इसलिए खाना दुकान से ही भिजवा दें। तब मालिक और नौकरों के सामने आपातकालीन स्थिति पैदा हो जाती थी। कई बार दोबारा सब्जियाँ बनानी पड़ती थी या परांठे वाली गली से सब्जी मँगानी पड़ती थी। लेकिन ऐसा कम होता था। दोपहर का खाना बनाना नीमा को खुद भी पसंद था। उससे वह बहुत कम मुँह मोड़ती थी। मौज की बात और थी।

जब तक रज्जन नहीं हुआ था और उसका दूसरा आदमी जीवित था, नीमा अक्सर सनक जाती थी। रात को जब वह घर की तरफ

लौटता था तो उसके पाँव थान की तरफ लौटते हुए घोड़े की तरह उठते थे। उसके एक हाथ में टिफ़न-कैरियर होता था और दूसरे हाथ में मिठाई का दौना, और झपटा हुआ घर की तरफ लौटता रहता था। वह मिठाई एक ही दुकान से खरीदता था। हालाँकि नीमा ने एक बार ही उस दुकान की मिठाई के बारे में अपनी पसन्द का इज़हार किया था तब से वही दुकान उसके लिए पेटेण्ट हो गई थी। जहाँ तक उसका अपना सवाल था वह मिठाई के नाम पर गुड़ खाकर भी काम चला सकता था।

अपने घर के दरवाज़े पर जाकर वह एक मिनट ठिठकता था। उसे बाहर से ही अन्दाज़ लग जाता था कि अन्दर तापमान का क्या हाल है। ज़िन्दगी-भर वह यह कभी नहीं समझ पाया कि अन्दर की स्थिति का अन्दाज़ कैसे लगा लेता है। क्योंकि ज़्यादातर उसका अन्दाज़ सही ही बैठता था। अगर तापमान अधिक मालूम पड़ता था तो उसके घुटने टूटने लगते थे और वह हतोत्साह हो जाता था। आँगन पकड़ना उसके लिए मुश्किल पड़ता था। उसके पास एक ही रास्ता था कि वह स्थिति का सामना करने के लिए अपने-आपको निर्वीर्य बना ले। उसे केवल संकल्प करना पड़ता था कि वह कतई नहीं बोलेगा और उसका संकल्प निभ भी जाता था। वह नीमा की बातें केवल प्रवचन की तरह सुनता रहता था और बोलने के नाम पर उसे समझाता रहता था या खुशामद करता रहता था। उसकी खुशामद में लफ़्ज़ बहुत कम होते थे। जब वह बहुत कह चुकती थी तो वह ज़्यादातर यही कहता था, 'ठीक है भाई, जो चाहे कह लो। तुमने अपना बना-बसाया घर मेरे लिए छोड़ा है। मैं अहसान नहीं भूलता। तुम जो चाहो कहो''''तुम्हारी कुर्बानी मेरे दिल से ओझल नहीं हो सकती।'

नीमा ठंडी होने में वक्त लेती थी।

ज़बान कतरनी की तरह चलती थी। कहनी-अनकहनी सब-कुछ कह जाती थी। वह पाथर था। चोट खाता था पर बोलता नहीं था। थिर बना रहता था। एक-आध बार वह यहाँ तक पहुँच गई थी कि 'इस उम्र में अव्वल तो तुम्हें शादी के लिए कोई मिलती नहीं। मिलती तो कोई

बुड्ढी-ठेरी। ऐसी ब्याहता रखने के लिए टाँगों में जान चाहिए। मैं तो दामंदार हूँ जो बँधी हूँ और कोई तो इज्जत उतार लेती।'

उस रोज़ उसमें इन्सान होने की रमक आई। बोला लेकिन बहुत दबकर बोला, 'नीमा, तुम बहुत कह जाती हो। मेरा दिल छलनी हो जाता है। लेकिन तुमने मेरे लिए कुर्बानी की है। मैं अहसान नहीं भूलता।'

उसके साथ नीमा काफी चुटीली नागिन बनी रही। वह कहने से बाज नहीं आयी, 'बोलोगे किस मुँह से। है कोई मुँह बोलने के लिए। वह निठल्ला और गरीब था। उसमें मर्दों वाली बात थी। मारता था··· चोट ज़रूर लगती थी ··पर मरा-गिरा नहीं था। तुम्हारे साथ दो साल होने को आये····जैसी आई थी वैसी ही हूँ। बेटी भी छोड़ आई।'

उस दिन वह पूरी तरह इन्सान बन आया था। उसकी आँखें फूट पड़ी थी। तबीयत भर-भर कर आ रही थी। थोड़ी देर चुप बैठा रहा फिर बोला, 'किस्मत का इतना माड़ा न होता तो इतनी बात तुम कहती! बातें तुमने ऐसी कह दी कि गैरत तो कहती है, कहीं डूब मरूँ। पर ऐसा करूँगा नहीं।' कहने के बाद भी वह चाबुक की मार की तरह बलबलाता रहा था। बार-बार कुछ कहते-कहते रुक जाता था।

नीमा की ज़बान उसके घर में आकर खुली थी। नई-नई बदज़बानी के साथ वह समझदार भी थी। बात की नजाकत समझ जाती थी। उसने अपने आदमी को पहली बार इतना कहते और दुख मानते हुए महसूस किया था। वह ताड़ गई थी कि उसके दिल में बहुत अन्दर तक दुख पहुँचा है। वहाँ से वह टल गई थी और कुछ देर तक रसोई में ही बर्तनों की धर-पटक करती रही थी। वह दीवार की तरफ मुँह करके खाट पर लेट गया था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद नाक सुड़कता रहा था।

नीमा रसोई में बैठी-बैठी उसके नाक सुड़कने से हालत की नजाकत का अन्दाज लगाती रही थी। बर्तनों का रखा जाना या आपस में टकरा जाना उसे काफी ध्वसकारी लगने लगता था। इतना अधिक भय उसके मन में पहली बार घुमड़ा। इस सबके बावजूद वह बात-बहादुर थी और अपने को दूसरे पर लाद देने की आदत उसने विकसित कर ली थी।

उसे संतुलन बिगड़ता हुआ महसूस हुआ।

घटे-भर बाद नीमा ने उसे पाँव की तरफ़ से हिलाया, 'उठो, खाना खा लो।'

वह बहुत आसानी से उठ गया और बोला, 'चलो।'

इतनी जल्दी उठ जाने ने नीमा को थोड़ा आश्चर्य में डाल दिया। कही गई सब बातें उसे फेन की तरह तैरती हुई महसूस होने लगी। एक मिनट उसके चेहरे की तरफ देखा। बात फिर उसके सिर चढ़ने लगी, 'क्या तुम बुलाने की बाट देख रहे थे?'

उसने सिर्फ गर्दन हिलायी और नल के पास जाकर हाथ-मुंह घोने लगा। वह रसोई मे जाकर खाना लगाने के लिए खडी रही। धोती के पल्ले से ही हाथ-मुंह पोछकर वह रसोई में चला गया। उसने एक नज़र डाली। फिर धीरे से बोला, 'छत काफी काजू-बोजू हो गई है। इस बरसात को सँभाल पाना मुश्किल होगा। छत गिरते ही घर मे चाँदना हो जायेगा।'

नीमा ढाबे से आया खाना थाली में लगाने लगी। खाना लगाकर थाली उसकी तरफ खिसका दी और अपने-आप हाथ पर हाथ रखकर बैठ गई। उसके आदमी ने उसकी तरफ देखा, 'तुम नही खाओगी?'

उसने गर्दन हिला दी और ज़मीन देखने लगी। वह बोला, 'भूख तो मुझे भी नही रही थी। तुम्हारी वजह से बैठ गया था। तुम भूखी ना रहो।'

नीमा अपनी रिस पर उतर आई, 'नहीं, मेरे लिए ना खाओ। अपने पेट के लिए खाओ।'

उसने पहली बार नीमा की तरफ तेज नज़र से देखा लेकिन दूसरे ही क्षण बुझती गई। वह धीरे से बोला, 'आज तुम मरने-मारने पर उतारू जान पड़ रही हो। मैं थाली छोड़कर उठ भी जाता लेकिन रोटी बेचकर ही अपनी रोटी कमाता हूँ। तुम्हारी रिस तो ओट लूंगा पर रिजक की नाराज़गी नही ओट पाऊँगा। जब रिजक रूठता है तो दुनिया की बड़ी से बडी चीज उसकी जगह नही ले सकती।'

उसने एक परौठा हाथ में ले लिया और उसी पर ज़रा-सी सब्ज़ी

रखकर खाने लगा। नीमा उसी तरह गर्दन घुटने पर रखे नीचे देखती हुई अँगूठे से जमीन कुरेदती रही। परांठा खाकर लोटे से ही पानी की धार गले में डाली और उठ गया।

नीमा ने पूछा, 'एक ही परांठा खाग्रोगे ?'

'मेरे लिए एक ही बहुत है, ऐसे भी हैं जिन्हें कई-कई दिनो टुकड़ा भी देखने को नही मिलता।'

नीमा की डूबी हुई समझदारी फिर ऊपर ग्रायी। उसने हाथ पकड़कर बैठा लिया। उसके ग्रादमी के चेहरे से लगा वह दयनीय भी है। वह बिना किसी जद्दोजहद के बैठ गया। बैठकर उसने पूछा, 'कहो।'

नीमा ग्रपने को सँभालने की प्रक्रिया मे कुछ देर उलझी रही। ग्रौरत होने के बावजूद वह उस माहौल से ऊपर ही रहना चाहती थी ग्रौर मजबूती दिखलाना चाहती थी। लेकिन उसकी पूरी प्रयत्नशीलता उसे कमजोरी के ग्रहसास से मुक्ति नही दिला पायी। थोड़ी देर तक उसका हाथ पकड़े रहने के बाद नीमा ने हाथ छोड़ दिया ग्रौर धीरे से कहा, 'जाग्रो।'

वह एक-दो मिनट बैठा रहा। एक बार उसने ग्रपना हाथ नीमा की पीठ पर भी रखना चाहा लेकिन बीच से ही लौटा लिया। फिर वह उठकर ही चला गया ग्रौर उसी खाट पर दीवार की तरफ मुँह किये काफी देर तक लेटा रहा। उसकी ग्राँखें ग्रँधेरे में भी पूरी खुली रहीं। वह नीमा को रसोई में उसी जगह जमीन कुरेदते हुए बैठी महसूस करता रहा। छत की भी चिन्ता बनी रही—वह कभी भी गिर सकती है। एक-ग्राध बार मन हुग्रा उठकर देख ग्राये, नीमा ने क्या किया या क्या कर रही है। बैठी ही बैठी तो नही सो गई! वह उठने तक पहुँचा भी लेकिन लेट गया। उसकी नाराजगी वह खामोश रहकर ही बर्दाश्त करता ग्राया था। नाराजगी को बर्दाश्त भी चुप रहकर ही किया जा सकता है। इस बात को उसने ग्रपनी जिन्दगी से ढूँढकर निकाला था।

वह चाहकर भी ग्राँखें नही झपका पा रहा था। नीमा की मौजूदगी मय रसोई की बोसीदा छत के उसके उसी कमरे मे बनी हुई थी। रसोई की छत के बोसीदापन ने उस कमरे में ग्राकर कमरे की छत के बारे मे

भी उसे शंकित करना शुरू कर दिया था। सब छतें एक-सी हो गईं?

आधी रात के कुछ पहले नीमा कमरे में लौटी। वह उसी कमरे में जमीन पर कपड़े बिछाकर लेटती थी। कपड़े बिछाकर चुपचाप लेट गई। हालांकि नीमा के आने पर उसके आदमी ने आँखें बन्द कर ली थी फिर भी वह नीमा का बिस्तर बिछाना, लेटना, अपनी ओर एक बार देखकर करवट ले लेना महसूस करता रहा था। आँखें बन्द करके जगते रहने की मजबूरी से वह चाहकर भी नहीं उभर पा रहा था।

नीमा एक बार पानी पीने के लिए उठी तो उसने पूछा, 'तुमने खाना खाया?'

पहले वह चुप रही, फिर अपने-आप ही कहा, 'नहीं।' उसका नहीं कहना रात-भर कमरे मे भटकता हुआ-सा उसके पास पहुँचा। नीमा ने समझा वह उसके नहीं को पी गया। लेकिन एक हाइफननुमा खामोशी के बाद वह बोला, 'नीमा, एक बात कहूँ—तुम मेरी बेइज्जती कर दो तो कोई बात नहीं, लेकिन रोटी को न ठुकराया करो। चुचकार कर खाना चाहिये।'

वह चुप रही। वह भी चुप रहा। कुछ देर बाद उसने ही पूछा, 'खाना उठाकर रख दिया?'

'हाँ।'

'जाओ खा लो। खाने से क्या दुश्मनी। तुम्हें अपने दुश्मन को पहचानना चाहिये। जिस पर देखा उसी पर गुस्सा उतार देना ठीक नहीं। अगर तुम्हारी नाराजगी मुझसे है तो मुझपर नाराज हो। खाने के लिए भगवान का शुक्र करके खाओ। जहाँ लाखों भूखे सोते हैं वहाँ हमें दोनो वक्त रोटी मिलती है।'

वह उसी तरह बैठी रही जैसे पानी पीकर लौटने पर बैठी थी। वह चुप हो गया। उसको उसी तरह बैठा देखकर उसने फिर कहा, 'नहीं खाना तो सो जाओ। सवेरे देखा जायेगा।'

कुछ देर रुककर उसका आदमी फिर बोला, 'ढाबे में भी जब लोग जूठन छोड़ते हैं तो मुझे लगता है उनसे हाथ जोड़कर कहूँ, जूठन मत

छोड़िये। इतनी जूठन से कई भूखों का पेट भरेगा। लेकिन पैसे दिये होते है। जिस चीज़ के आदमी दाम चुका देता है उसका वह खुद मालिक बन जाता है। उसके बारे में ना दूसरे को कहने का ही हक होता है ना वह मालिक की हैसियत से सुनना ही चाहता है। तबीयत मसोसकर रह जाता हूँ। सोचता हूँ, भूखे आदमियों की जगह उसे नाली के कीड़े खा जायेंगे।'

नीमा बोली, 'तुम सो क्यों नही जाते! तुम्हारे बोलते जाने से मेरा सिर दुखता है। तुम्हारी बातें मेरी समझ मे नही आती।'

'सोना तो चाहता हूँ पर लगता है सोना भी सदा अपने बस मे नही रहता।' रुककर बोला, 'तुम सो जाओ, मैं नहीं बोलूंगा।'

'तुम जब देखो मिनमिनाया करते हो। अपनी बात जोर से क्यो नही कहते! वह इतनी जोर से चिल्लाता था कि कानों के पर्दे हिल जाते थे। तुम बोलते ही इतने धीरे हो कि'''समझ में नही आता क्या करूँ'''कहाँ डूब मरूँ!'

उसने धीरे से कहा, 'अच्छा अब सो जाओ।'

वह बिना कुछ जवाब दिये चुपचाप बैठी रही। वह उसे देखता रहा। फिर आखिर में करवट दूसरी तरफ ले ली। करवट ले लेने के बाद भी वह अपने-आपको उतना ही जाग्रत और नीमा के बारे मे चिंतित मालूम पड़ता रहा जितना वह तब था जब उसे सीधे देख रहा था।

नीमा ने एक लम्बा-सा साँस छोड़ा। उसने महसूस किया, वह लेट गई। वह पाँव पेट में घुसाकर गठरी-सी बनकर लेटती थी। कई बार कहा, खाट डाल लिया कर, पर उसे जमीन पर लेटने की जिद थी। उसे भी उसकी जिद के सामने झुककर नीचे ही जाना पड़ता है। जमीन में लेटने से उसकी पीठ अकड़ जाती है। नही तो वह भी वही लेटने लगता। उसकी बातों ने उसके अन्तर को बुरी तरह वेध दिया। अब उसकी गरूला के नीचे पड़ा वह सिसकता ही रह सकता है। जब आदमी शुरू-शुरू में सामने होता है तो बड़ी दुकान मे सजी मूर्त्ति की तरह लगता है। बाद में मिट्टी का पता चलने लगता है। लोग रँग-चुंगकर उसकी मिट्टी को दबा देते है।

उसे लगा नीमा फिर उठ गई। उसने करवट बदलकर देखने के खिचाव को अन्दर ही अन्दर महसूस किया। वह मुश्किल से रोक पाया।
नीमा वाकई उठी हुई थी।

सुबह नीमा जल्दी ही उठी। उसकी आँखों पर लम्बी मंजिल तय करने का भारीपन था। खिचाव के बाद का ढीलापन था।
उसके आदमी को और भी देर से रात नींद आई थी। वह रोज़ से आधा घंटा देर मे उठा था। तब तक सवेरा हो गया था। उसका चेहरा ठहर गया था। आँधा उतर जाने के बाद छोटा-सा गोल तालाब! जब वह उठा तो नीमा भीगे हुए बाल फैलाये घर की धुली अधमैली धोती में तुलसी के बिरवे पर जल चढ़ा रही थी। उसने उठकर पाँच बार जमीन चुचकारी। फिर मुँह ढककर दुर्गा की मूर्त्ति के सामने गया। रोज मूर्त्ति के सामने ही आँखें खोलता था। आँखें खोलते समय वह अन्दर से बाहर आकर अपने ही चेहरे पर इकट्ठा हो जाता था। दयनीय और विनीत। उसने मूर्त्ति के सामने आँखें खोली तो वह और दिनों से ज्यादा दयनीय हो उठा।
बाहर आया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। क्षण-भर को नीमा के आदमी के चेहरे पर रात वाला साया आया। उसने घूमकर फिर मूर्त्ति की तरफ देखा। उससे उसे अपने को सँभालने मे फिर मदद मिली। वह दिशा-मैदान से निबटकर नहाया। नहाकर पूजा करने बैठ गया। नीमा रसोई की ड्योढ़ी पर बैठकर दाल बीनने लगी। ककर ही ककर थे। एक निकालनी थी तो उसे लगता था दो और बढ गये। उन्हें बीनने में वह पूरी एकाग्रता के साथ लगने का प्रयत्न कर रही थी। लेकिन बार-बार बिखर जाती थी और पूजा करते हुए अपने आदमी पर नजर चली जाती थी या आसमान में उडती अकेली चील पर नजर ठहर जाती थी।
वह काफी ज़ोर-ज़ोर से बोलकर पूजा कर रहा था। उसका ज़ोर से बोलना भी नीमा से एक-आध कंकर छुडवा देता था। उसे दोबारा देखना पड़ता था। नीमा ने अपने मुँह मे काफी सारा तम्बाकू भर लिया था।

पूजा खत्म करने से पहले वह घंटी बजा-बजाकर जोर-जोर से आरती गाने लगा। उसकी आवाज आरती गाने के साथ-साथ ज्यादा बुलन्द होती गई। वह किसी और शोर को जीतने की कोशिश करता हुआ-सा मालूम पडने लगा। नीमा उठकर अन्दर चली गई। आरती उसका पहला आदमी भी काफी गा-गाकर और जोर-ज़ोर से करता था। वह उसका पेशा था। कई बार ऐसा भी होता था कि आरती के ठीक बाद ही वह उसे परेशान करने लगता था। वहाँ भी नीमा ने एक तुलसी का बिरवा लगा रखा था। पूजा करने के बाद जब उसका पहला आदमी उस बिरवे से तुलसीदल लेता था तो लगता था वह काँप रहा है। तुलसीदल पीले पड़-पडकर झर रहे है। यह वैसा नही है। आज ही जोर-ज़ोर से बोलकर आरती कर रहा है। पूजा के बाद यह और ज्यादा चुप हो जाता है। इसने कभी तंग नही किया। उम्र भी ज्यादा है। अपनी बात उतनी जोर से नही कह पाता।

रात वाली थाली एक दूसरी थाली से ढकी रसोई के बीचो-बीच उसी तरह रखी थी। नीमा खड़ी उसे देखती रही। एक तरफ सरका दे या इसी तरह रखी रहने दे ? उसने थाली को उसी तरह रहने दिया। वही खडी-खड़ी दोबारा दाल बीनने लगी।

वह बाहर जाने वाला कुर्त्ता पहनता हुआ अन्दर से आया। नीमा ने कनखी आँखो से उसे आते हुए देखा। वह जूते पहन चुका था। रसोई के बाहर से ही पूछा, 'जलेबी ले आऊँ ?'

उसके मुँह मे तम्बाकू था। वह चुप रही। उसने जवाब का इन्तजार किया। जवाब नही मिला तो उसने फिर कहा, 'थैला उठा दो। आधा सेर ले आता हूँ। रात तुम भूखी सो गई थी।'

नीमा ने मुँह की पीक को रोककर बलबल करते हुए कहा, 'मेरा तो बरत है।'

'किस बात का बरत ? क्या आज भी तुम रात की तरह भूखी रहोगी ? भूखा रहना या भूखा रखना दोनो ही बुरी बात है। सब कुछ होते हुए भी भूखी रहो तो होने का क्या लाभ !'

वह उसी तरह दाल बीनती हुई बोली, 'बहुत दिन से संतोषी माता

का वरत नहीं रखा। खा-खाकर तो मरना ही है। एक दिन नही खाऊँगी तो क्या हो जायेगा!'

'पहले भी कई बार तुम नाराज़ हुई लेकिन ऐसा तो तुमने कभी नही किया। अगला दिन तो हमेशा नया दिन होता है।'

वह चुप हो गई।

वह कुछ देर खड़ा रहा फिर लौट गया। बाहर, जाने वाला कुर्ता उतारकर टाँग दिया। उसी खाट पर बैठकर माला फेरने लगा। नीमा ने अपने कपडे उठा दिये थे लेकिन कमरा झड़ा नही था। रात फिर वैसी की वैसी ही आ जमी थी।

वह धीरे से बोला, 'हे भगवान, आज का दिन भी ऐसा ही रहेगा। मेरे भाग मे कितना दुख लिखकर भेजा है। मैंने अपने कारण एक जीव को और दुखी कर दिया।'

उसने माला रख दी और दुर्गा की तस्वार के सामने अपने दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरे मे फँसाकर गिड़गिड़ाने की मुद्रा में आँखें बन्द करके बैठ गया।

थाली गिरने की आवाज आई। उसने आँखें खोलकर रसोई की तरफ देखा। आवाज़ से ही थाली का नाचते-नाचते रुकते जाना उभरता गया।

वह नगे पैरो रसोई तक गया। दाल ज़मान मे बिखर गई थी। बिनी और वेबिनी। वेबिनी दाल बिनी में मिल गई थी। नीमा उसे एकटक देखती रही। अन्दर जाकर उसने समेटना शुरू किया तो नीमा का रोना एकदम से फूट पड़ा। उसने झुके-झुके ही नीमा की तरफ गर्दन उठाकर देखा। धीरे से बोला, 'ठीक है, रोने से जी हल्का हो जायेगा।'

वह रसोई से निकलकर आँगन में तुलसी के बिरवे के पास जाकर खडी हो गई। बिरवा हवा मे धीरे-धीरे काँप रहा था। कई सारे पीले पत्ते थाले में इकट्ठे हो गये थे। वह दाल इकट्ठी करके बाहर ले आया और नीमा की तरफ बढ़ाकर बोला, 'लो!'

नीमा ने उसके हाथ से थाली लेकर नीचे रख दी। दूसरी तरफ

देखते हुए उसने कहा, 'नीमा, तुम अपना मन ठंडा रखने की कोशिश किया करो। अन्दर ही अन्दर उबलते रहने से अधिक दुख पैदा होता है। जाओ, अच्छे मन से रोटी बनाओ। अच्छे मन से बनाया खाना ही तन और मन को लगता है। ढाबे मे भी महाराज को यही बताया करता हूँ कि भैया खाना अच्छे मन से बनाया करो। तुम्हे खिलाये से पुन होगा और दूसरे को खाया लगेगा।'

फिर अपने-आप ही रुककर बोला, 'ये भाग की बात है, ना मेरे पास का सुख ही तुम्हे सुख लगता है और ना उसके पास का सुख ही तुम्हे सुख लगा। हम दोनों के दुख ही तुम्हारा मन दुखाते रहे। भगवान ही तुम्हारी सुनेंगे। मैंने तो सब उन्हे ही सौंपा हुआ है। एक विश्वासी के पास यही सबसे बड़ा सहारा है। यह ना हो तो आदमी अपने को ही अपने-आप खाता रहे।'

नीमा ने धीरे से कहा, 'आज तुम ढाबे में ही खा लेना।' फिर रुककर बोली, 'शाम को भी मेरा बरत है, शाम को भी वहीं खाते आना।'

उसने नीची गर्दन करके सुना। कमरे में गया, कुर्ता पहना और जूता पहनता हुआ बाहर निकल गया। नीमा थाले में से पीले पत्ते एक-एक करके बीनकर निकालने लगी।

उस रोज़ वह ढाबे नही गया था। सिर के दर्द के कारण घर ही रह गया था। वातावरण सामान्य होते-होते काफी हद तक सामान्य हो गया था। नीमा यद्यपि एक वक्त खाने लगी थी लेकिन उतनी उदास और नाराज नही रहती थी। बस बोलती अपेक्षाकृत कम थी। काम चक्की की तरह करती थी। लेकिन उसके करने से लगता था, कामो मे से कोई भी काम उसका अपना नहीं है। इसका वज़न कभी-कभी उसके आदमी के दिल पर चढ़ जाता था।

उसने पुकारा, 'नीमा।'

वहीं से जवाब देने के बजाय नीमा उठकर वहाँ तक आई और पास आकर बोली, 'हाँ।'

उसने बिना नीमा की तरफ देखे कहा, 'एक गिलास में चाय दे दो। दो तुलसीदल भी डाल देना।'

'अच्छा' कहकर वह लौटने लगी तो उसका आदमी बोला, 'नीमा, तुम बहुत उदास रहती हो। अब क्या सदा ऐसी ही रहोगी?'

उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'चाय बनाकर अभी लाती हूँ। तुम दुकान चले जाते तो मन बदल जाता।'

'तुम कहो तो चला जाऊँ, पीपल के नीचे लेट जाऊँगा।'

नीमा तमककर बोली, 'तुम्हारी मर्ज़ी! जाना चाहो तो चले जाओ। मैं जाने को कह रही हूँ ना रुकने को। मैं कहने वाली हूँ ही कौन! मैंने तो मन बदलने की वजह से कह दिया था, उसी का बुरा मान लिया गया।'

उसने नीमा की तरफ देखकर एक लम्बा-सा साँस छोड़ते हुए कहा, 'अच्छा, जाओ चाय बना लाओ।'

वह क्षण-भर रुकी फिर चली गई।

उसके आदमी का सिर बड़ा था। वह अपना बड़ा-सा सिर लटका-कर बैठ गया। सिर की जगह एक बड़ा-सा वजन महसूस होता रहा। बीच-बीच में उसके होंठ फड़क रहे थे। कभी-कभी वह अपनी आँखें मटकाता था। मटकने के बजाय वे इधर-उधर हिलकर रह जाती थीं। उँगलियों में उँगलियाँ फँसाकर उसकी मुद्रा गिड़गिड़ाने वाली हो जाती थी।

उसने अपने कुर्ते की तरफ देखा। काफी मैला हो गया था। उसकी धोती भी मैली थी लेकिन सफेदी के कारण बचा-खुचा उजलापन था।

बैठे-बैठे उसे लगा वह सूखता जा रहा है। वह उठा और दरवाज़े तक गया। नीमा चाय का गिलास एक कटोरी में रखे और आँचल से मुँह पोंछती हुई रसोई से निकल रही थी। वह लौटकर फिर खाट पर बैठ गया। नीमा चाय लेकर उसके सामने जा खड़ी हुई। धीरे से कहा, 'लो चाय!'

उसने चाय का गिलास कटोरी समेत थाम लिया और कटोरी में उँडेल-उँडेलकर पीने लगा। नीमा खड़ी देखती रही। उसने घूँट भरते

हुए कहा, 'तुम अपने लिए भी ले आओ।'

वह बिना जवाब दिये चली गई। जब तक लेकर लौटी उसके आदमी ने चार-पाँच घूंट भर ली थी। घूंट भरने में जो आवाज हुई थी वह कमरे मे खालीपन की वजह से ज्यादा स्थायी महसूस हुई थी। लेकिन उसके लौटने पर ऐसा नही रहा। वह वहीं ज़मीन पर बैठकर दोनों हाथों के बीच गिलास पकड़कर बिना आवाज़ किये पीती रही।

वह अपने-आप ही बोला, 'तुम चाय पीते हुए आवाज नही करतीं। ये अच्छा है। पढे-लिखे लोगों के साथ तुम्हे परेशानी नही होगी। हालांकि चाय आवाज करके पीने मे शर्म नही लगती। ढावे में जब सब लोग चाय पीते है तो काफी जोर-ज़ोर से आवाजे होती है।' कहकर वह अपने-आप ही हँस दिया।

नीमा ने भी हँसना चाहा पर हँस नही सकी। उसे लगा उसका मुँह अब हँसने लायक नही रहा। घूंट गले के नीचे उतारकर बोली, 'मुझे तो आदत है। आवाज़ पहले भी सुनती थी अब भी सुनती हूँ।'

'क्या मैं हर मामले में उस जैसा ही हूँ?'

नीमा ने घूंट भरते-भरते गर्दन उठाकर उसकी तरफ देखा। वह कटोरी मे चाय उँडेल रहा था। नीमा ने घूंट खत्म करके कहा, 'मैंने कब कहा? तुम्हारे कान आप ही आप बजने लगते हैं।'

'नहीं, मैंने वैसे ही पूछा।' फिर रुककर बोला, 'तुम्हारा दुख देखकर ही इस तरह के उल्टे-सुल्टे सवाल दिमाग़ में आने लगते हैं।'

'मेरे दुख की बात करना क्या जरूरी है? जो मेरे भाग में लिखा है उसे मैं नहीं भोगूंगी तो कौन भोगेगा। तुम मुझे सोने से भी लाद दो तो क्या दुख मिट जायेगा? जो कुछ है मेरे अन्दर का ही है। आदमी के अन्दर तक तो दुख और सुख ही पहुँचते हैं, सोना-चाँदी नही पहुँचते।'

नीमा बोलते समय दोनों हाथों में गिलास घुमाती रही।

'नाराज़गी से ही सदा काम नहीं चलता नीमा। मेरे पास कहाँ रखा है सोना-चाँदी। मेरे पास जो कुछ है वह मैं ही हूँ। अगर मैं तुम्हे सुख नही दे सकता तो मेरे ही भाग का खोटापन है।'

उसकी चाय खत्म हो गई थी। खाली गिलास और खाली कटोरी

उसने ज़मीन पर रख दी। वे दोनों अपने खालीपन के साथ कमरे के बीचो-बीच उग आये। नीमा ने पहली दो-चार घूंट के बाद अब तक घूंट नही भरी थी। उसकी आँखे भरी-भरी होने के कारण ज्यादा लम्बी लग रही थी।

वह ही बोला, 'मै जितना अधिक तुम्हे दुख नही देना चाहता उतना ही दुख पहुँचा देता हूँ। कई बार लगता है, तुम छोटी हो, तुम्हे सुखी रखना मेरा धर्म है पर कुछ समझ मे नही आता क्या हो जाता है! कैसे मेरी सुख पहुँचाने की कोशिश दुख का कारण बन जाती है।'

'तुम मुझे बेटी बनाकर लाये हो या घरवाली?' दोनों हथेलियों मे गिलास को कसकर पकडते हुए नीमा ने कहा, 'मुझे किसी की दया नही चाहिये। वह मुझे खा जाती है। वह चिल्लाता था, मारता था, पर दया नही दिखाता था। तुम अपने बड़प्पन के घमड मे मुझसे इस तरह बोलते-बतलाते हो जैसे मैं तुम्हारी गोद-खिलायी हूँ। एक बेटी की माँ हूं। सारी बदनामी मोल लेकर तुम्हारे घर इसलिए नही आयी कि तुम धीरे-धीरे बोलकर, बच्चो की तरह बहलाकर अपना बडप्पन बनाये रखो और मुझे अपनी दया से पीस डालो। मैंने वहाँ अपनी बेटी छोड़ी है' वह रोने-रोने को हो आयी।

नीमा का आँसू आना गरु बनता गया। गरुता उसे दबाती गई। वह चुपचाप उन खाली बर्तनो को देखता रहा। नीमा ने जब आँसू पोछ लिये तो उसने नई तरह से कहा, 'मैं कैसे समझाऊँ कि मैंने तुम पर लेश मात्र भी दया नही दिखायी। जो मेरा इतना पुराना स्वभाव है उसे कैसे बदल दूं। ऐसा कुछ नही करता जो तुम्हे दिखाने के लिए हो या कुछ छिपाने के लिए हो। तुम्हारी बेटी को मै लाकर तुम्हे नही दे सकता। बताओ क्या करूँ··· तुम्हें सुखी करने के लिए जो भी हो सकेगा जरूर करूँगा।'

'मुझे किसी का दिया सुख नही चाहिये। उस कमबख्त ने मेरी हड्डियाँ मीज डाली तुम मेरी आत्मा मसोस डालो। वह दिन-भर पत्रे-पोथी खोले बैठा रहता था। अपने को बहुत बड़ा पडित बताता था। व्यवहार जानवरो जैसा था। उन दोनो कामों से रोटी थोड़े ही मिल

सकती थी। ना भूख सही गई ना मार और ना उसका अत्याचार। बिटिया तक को छोड़ दिया। मत मारी गई थी। देह के लिए ··!'

'इतना दुख है तुम्हें। मुझे मालूम नहीं था। नहीं तो मैं तुम्हें कभी वहाँ से ना उजाड़ता। अगर तुम अब जाना चाहो तो मैं तुम्हें रोकूँगा भी नहीं।'

'तुम क्यों रोकने लगे! मुंह काला किये का फल भोग रही हूँ।' वह उठकर रसोई में चली गई। वे दोनों खाली बर्तन और गहरे हो गये।

नीमा के चले जाने पर उसे लगा, कमरे की दीवारें पास-पास आती जा रही हैं। हो सकता है उसे पीस डालें। तबीयत में घबराहट पैदा होने लगी। वह गिलास और कटोरी को उठाकर रसोई में रखने के लिए चला गया। रसोई के दरवाज़े पर ही उसके हाथ से कटोरी छूट गई और वह ज़मीन पर लगातार नाचने लगी। नाचती हुई कटोरी कमरख की शक्ल अख्तियार कर लेती थी और फिर कटोरी हो जाती थी। झुककर उसने नाचती हुई कटोरी उठा ली और बर्तन माँजने वाली जगह पर पाँव बढ़ाकर रख दी।

नीमा चुपचाप पटरे पर बैठी पैर के अँगूठे से फ़र्श खुरचे जा रही थी। उसने उसकी तरफ़ देखकर पूछा, 'आज क्या दाल नहीं चढ़ाओगी?'

उसने धीरे से कहा, 'तुम वहीं ढाबे में खा लेना।'

'सोचा था आज घर पर ही आराम करूँगा। वहाँ जाकर धुएँ में बैठना पड़ता है। गाहकों से झक मारनी पड़ती है। शोर होता है। सिर पिराने लगता है···तुम कहती हो तो चला जाता हूँ।'

एक मिनट वह नीमा का जवाब सुनने के लिए खड़ा रहा। नीमा उसी तरह चुपचाप बनी रही। चलने से पहले फिर उसने कहा, 'तुम कहो तो मैं खाना बनवा दूं। ढाबा भी मैंने अकेले ही शुरू किया था। अकेले ही रोटी सेकता था और अकेले ही परसता था। तब इतनी गुंजायश नहीं थी कि एक भी आदमी मदद के लिए रख सकूं। बस एक काहर झूठे बर्तनों के लिए रखा था। उसकी तनख्वाह तक देनी मुश्किल हो जाती थी। चूंकि खाना मैं चाव से बनाता था इसलिए दुकान चल

गई। अब तो भगवान की बडी मेहर है। जहाँ तक होता है नीयत में अभी भी फर्क नही आने देता।'

नीमा ने उसकी तरफ नाराजगी से देखा, 'तुम मर्दों की तरह क्यो नहीं बोलते। मुझ पर तुम्हारी इस तरह की बातें नही सुनी जाती। मारने-पीटने से ज्यादा ऐसी बातें दुख देती है। आज तुम वही दुकान पर खा लेना।'

उसके चेहरे पर चोट खाये हुए जानवर वाला भाव आया। उसे लगा वह पहली बार उस पर टूट पड़ेगा। लेकिन टूट पड़ने वाले उस भाव की अनुगूंज उसे अपने अन्दर महसूस नही हुई। ऊपर से ही सरक गई। वह और ज्यादा खामोश हो गया और कमरे को वापिस लौट गया। उसने वही मैला कुर्ता खूंटी से उतारकर गले में डाला। बटन बद करता हुआ बाहर निकला। नीमा ने अपनी गर्दन उठाकर उसे बाहर निकलते हुए देखा और दीवार के पीछे हो गई।

उसने आंगन के बीचो-बीच पहुँचकर कहा, 'अच्छा तो कुंडी लगा लो। मैं चला।'

उसके इस वाक्य से नीमा को घुरघुरी-सी आ गई। वह अपने अन्दर ही अन्दर बहती-बहती रुक गई। झपटकर रसोई के दरवाजे पर आयी। वह गर्दन झुकाकर बाहर निकलने को था। नीमा ने पुकारा, 'सुनो।'

वह मुड़कर देखने लगा। वह तुलसी के थान तक बढ आई। वहाँ पहुँचकर उसे अहसास हुआ कि वह वहाँ तक नाहक बढ आई है। तुलसी के थांवले मे पडा एक पीला पत्ता उठा लिया। उसे जीभ पर रखकर घोलने लगी। वह लौट आया और पूछा, 'पैसे चाहिए ?' और कुर्ते के अन्दर वाली जेब मे हाथ डालकर रुपये निकालने लगा।

वह जोर से बोली, 'तुम क्या यही समझते हो जो मैं कर रही हूँ पैसो के लिए कर रही हूँ। मेरी बात अब तुम्हारी समझ मे कभी नहीं आ सकती।'

उसका हाथ रुक गया और उसी तरह खडे-खडे पूछा, 'तो क्यों बुलाया था ?'

वह धीरे से बोली, 'तुम्हारी तबीयत खराब है'''रोटी यही बन जायेगी। कभी-कभी मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ जाते हैं। तुम कुछ कहते क्यों नहीं'''मेरा स्वभाव मेरे बस में नहीं।'

उसका चेहरा एकाएक साफ होता नजर आया। वह लौट आया। नीमा रसोई में जाकर फिर दाल निकालने लगी।

खाना खाते हुए उसने पूछा, 'नीमा तुम्हें क्या दुख है ? मैं तुम्हें दुख जरा भी नहीं पहुँचाना चाहता।'

नीमा ने उसकी थाली में एक कटोरी और रख दी।

वह कहता गया, 'आज तुमने खाना नहीं खाया। कभी तुमने आज के दिन बरत नहीं रखा। तुम एकाएक बरत कैसे रख लेती हो ? दुख से ही ना !'

उसने कटोरी में दाल परोस दी। वह दाल और नहीं लेना चाहता था लेकिन नीमा ने कुछ और कहने का मौका नहीं दिया।

उसने धीरे से कहा, 'बहुत खा लिया।' फिर बोला, 'मैंने भी यही सोचा था आज बरती रहूँगा। तुमने ढाबे में खाने को कहा था ना ! भला यह अच्छा लगता, रोज घर से खाकर जाता हूँ, आज वहाँ जाकर खाऊँ ? तुमने अच्छा किया रोटी बना ली। घर और चूल्हा हो तो दोनों की शोभा रोटी बनने से ही होती है। जब तक तुम नहीं आई थी तब तो वहाँ खाता ही था। मुझे बुरा भी नहीं लगता था। अब तो मुझे घर की रोटी छोड़कर बाहर खाना कोठे पर जाने की तरह लगता है।'

एक रोटी और देनी चाही तो उसने मना कर दिया। वापिस कटोरदान में रखते हुए बोली, 'तुमने तब क्यों नहीं कहा ? मेरे एक दुख का कारण तुम्हारा यह पराया व्यवहार ही है। जैसे तुम कोई और हो और मैं कोई और'''!'

'और दूसरा ?'

'दूसरा कुछ नहीं'''

'फिर भी कुछ तो बताओ।'

'उसके पास इतना भी खाना नहीं था कि बिटिया को दो जून पेट भरने के लिए भी दे दे। अब तो और बड़ी भी हो गई होगी। मैं खाती अच्छी थोड़ा ही लगती हूँ!'

वह उसे एकटक देखने लगा।

नीमा खुद ही बोली, 'सुना है लड़की तीन दिन से बीमार है। पता नहीं दवा-दारू भी हो रही है या नहीं?'

वह चुपचाप थाली सरकाकर उठ गया।

नीमा धीरे-धीरे बिसुरती रही। वह कमरे में जाकर थोड़ी देर बैठा रहा। फिर लट गया। काफी देर उसकी बद पलकों के नीचे पुतलियाँ हिलती रहीं। फिर उठ बैठा। नीमा रसोई मे ही थी। उसने कुर्ता पहना, बटन बद किये। क़दम आगे बढ़ाया, फिर रुक गया। एक-दो मिनट चुपचाप खड़ा रहा। फिर एकाएक तेज़ी से बाहर जाता हुआ बोला, 'कुडी चढ़ा लेना।'

नीमा के सामने उसकी आवाज उतना ही वजूद बनाकर खड़ी हो गई जितना वह खुद था। उसने बार-बार नजरअन्दाज करना चाहा लेकिन वह बनी रही। नीमा उठकर दहलीज तक गई। कुडी चढ़ाकर दरवाज़े से पीठ टिका ली और दोनो हाथ मुँह पर रखकर फूट पडी। उसका रोना वहाँ से रसोई तक बिछ गया। रसोई तक वह रोती ही रही। और उसी रोने के साथ चलती भी गई।

रसोई मे उसके आदमी की जूठी थाली रखी थी। थाली सरकाने से ज़मीन पर एक सड़कनुमा खसखसी घिसरन-सी उभर आई। उसने घिसरन को पैर से मिटाना चाहा। लेकिन मिटने के बजाय वह अधिक तिरछी-तिनकी और बेतरतीब हो गई।

नीमा कमरे मे गई। सब कपड़े एकसाथ उतार दिये और दूसरे कपड़े पहनने लगी। उसने कपड़े इतनी जल्दी-जल्दी पहने कि कपड़े उतारने और पहनने के बीच का अवकाश उसे पूरी तरह उघाड़ नहीं सका। कपड़े बदलकर उसने कमरे का ताला लगाया, रसोई के किवाड़ उढ़काये और दरवाज़े तक गई। उसे फिर लगा उसके आदमी की आवाज बद दरवाज़े के सामने अपने उसी वजूद के साथ पीठ टिकाये

खड़ी है—'कुंडी चढा लेना।'

वह आवाज़ धीरे-धीरे बढती गई और दरवाजे को ढककर खड़ी हो गई। उसके लिए दरवाज़ा खोजकर खोल पाना मुश्किल हो गया। वह लौट पड़ी। रसोई का उढका हुआ दरवाजा खोला। कमरे का ताला खोला। एक नजर दरवाज़े पर डाली। कुंडी-चढा दरवाजा फिर उभर आया था। लेकिन उसने तुलसी के बिरवे के सामने माथा टेक दिया। काफी देर तक वह तुलसी के बिरवे के सामने खडी रही। फिर कमरे में जाकर बिना कुछ बिछाये जमीन पर लेट गई। बराबर में उसके आदमी का पलंग खाली था। उसने पलंग को खड़ा कर दिया। कमरे में एकाएक काफी जगह हो गई। नीमा ने दो-तीन बड़ी-बड़ी करवटें लीं और ज़मीन की तरफ़ मुंह करके पट लेट गई।

काफी रात हो गई थी। उसकी खुली आंखों दो के घंटे बज चुके थे। उसका आदमी नहीं लौटा था। यह पहली बार था। उसका घर सडक के आख़िरी छोर पर था। उसके बाद झुग्गियां थी। आख़िरी घर होने की वजह से चौकीदार के लाठी पटकने और सीटी बजाने की आवाज़ रात-भर सुनाई पडती रही थी। रात पके बादलों की तरह घिर-घिरकर आती थी। फिर एकाएक लगता था तारा टूटा है। चमकीली पूंछ फहराता दूसरे कोने में ग़ायब हो जाता था। आकाश पर फिर नज़र डालने पर कही कोई कमी नजर नही आती थी। वही ठसा-ठसी। रात खिली होने पर भी अजीब रहस्यमयी बनती जा रही थी। तुलसी के बिरवे की पत्तियां खरगोश के कानों की तरह बैठी थी। तुलसी के सो जाने के अहसास ने उसकी असुरक्षा को और बढ़ा दिया था। उसने झटके से घंटी डुबाकर पानी निकालना चाहा तो आवाज ने उस पूरे सन्नाटे को और ज्यादा मज़बूती से जमा दिया। उसे लगा सन्नाटे की जकड़ के कारण उसका हाथ उसके मुंह तक नहीं पहुँच सकेगा और अगर पहुँच भी जायेगा तो वापिस आना मुश्किल होगा। उतनी-सी देर मे ही उसे लगा वह काफी देर से उसके बीच जमी खड़ी है।

लौटी तो सन्नाटा वद कावक की तरह उसके साथ-साथ कमरे तक मे घुस आया। लौटते समय उसे क़तई नही लगा कि वह चलकर पहुँची है। वल्कि यही अहसास वना रहा कि वह सन्नाटे की उस कावकनुमा सिल्ली मे जमी हुई है और वह सिल्ली ही लुढ़कती-पुढ़कती वहाँ तक पहुँची है। सिल्ली तिरछी हो गई और वह लेटने के अहसास से भर गई।

रात जव वीतने के नजदीक आई और उभरते हुए दिन के अहसास ने सन्नाटे मे थोड़ी-थोड़ी मुक्ति दिलायी तो नीमा दरवाजे तक गई। किवाड़ो की दरार से सड़क पर झांकने लगी। रात में एक-आध वार जव भी उसने उन दराजो से सड़क पर झांकने की कोशिश की थी तो अँधेरा इतना ठसाठस भरा नजर आया था कि उसमें सुई की नोक तक के जाने की गुजायश नही थी। और अव जव लोग-वाग सड़कों पर निकल आये थे तो सड़क झूला-पुल की तरह धीरे-धीरे हिल रही थी। उसका आदमी उनमे कही नही था।

क्या करे? रात की असमर्थता के सहारे उसने रात तो काट दी थी। समर्थ दिन उसकी सीमाओ को उभार रहा था। वह तड़फडा रही थी। वह वार-वार दरवाजे तक जाकर तुलसी के थान के पास लौट आती थी। उसकी विटिया अव पीछे पडती जा रही थी और आदमी दिन के साथ-साथ चढता आ रहा था। विटिया के ख्याल के साथ कभी-कभी उसका पहला आदमी झुटपुटे मे चलते राहगीरो की तरह हिलता नजर आता था। वह आँखें वन्द कर लेती थी। आँख वन्द करने के साथ ही वह ज्यादा साफ होने लगता था। आँखें फिर खोल देनी पडती थीं। वह विटिया को अपने पहले आदमी से अलग कर लेना चाहती थी। वह उसके साथ-साथ ही लगा था। उसका वेश—चुटिया, धोती, लम्वा कुर्ता, छोटा कोट ···। उसे हँसी आई पर वह गंभीर हो गई। दूसरा आदमी रात-भर क्यो नही आया?

'तवीयत कल खराव थी।'

'उसने उसे चले जाने दिया।'

'जाते हुए वह पहले ही की तरह रोक सकती थी।'

'लेकिन कहाँ रोका !'

'अब कहाँ ढूंढें ?'

हो सकता है उसकी तबीयत ज्यादा खराब हो गई हो। उसकी बातों से उसे चोट लगी है। जब तक वह घर पर रहा बराबर चोट से उभरने की कोशिश करता रहा। वह बराबर उसे चोट मे बोरती गई। शायद उसके भाग मे बच्चे और पति का सुख नाम को है।

वह फिर दरवाज़े के पास गई। काफी देर तक आँख गड़ाये खड़ी रही। शायद कोई ऐसा राहगीर निकल आये जिसे वह बुलाकर मदद के लिए कह सके। वे लोग उसे नितात अपरिचित मालूम पडे। उन सब अपरिचितों की शक्लें एक-सी ही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था। अब तक उसने सडक पर चलने वालों को पहचानने की दृष्टि से कभी नहीं देखा था। इसलिए उसे सोचने की जरूरत भी नही पडी थी। उसके सामने अपरिचय और अजनबीपन समान स्तर पर इतनी गहराई से कभी नहीं उभरे थे।

एक बदरवाला डुगडुगी बजाता हुआ चला आ रहा था। उसके पीछे-पीछे बहुत-से बच्चे हल्ला करते आ रहे थे। वह पहचान में आ रहा था। उसके घर के सामने ही वह उन बच्चो को तमाशा दिखाने लगा। बच्चे बहुत खुश थे। पिलपिली ससुराल नही जा रही थी और कचौडीमल उसे मना रहा था। कचौडीमल को गुस्सा आ गया तो वह पिलपिली को डडे से मारने लगा। बच्चे फिर बहुत खुश थे।

नीमा धीरे से बुदबुदायी, 'इस तरह के खेल क्यों दिखाते है ?' वह लौट आई। आंगन में खड़े होकर नितरते दिन को देखने लगी। कल इस वक्त तक उसका आदमी जलेबी लाने के लिए तैयार हो गया था। वह जलेबी क्यो लाता है ? उसके पास सिर्फ यही एक तरीका है ? वह बहुत सीधा है।

नीमा ने लौटकर कुल्ला किया, दांत मांजे, मुंह धोया और फिर दरवाज़े के पास जा खड़ी हुई। बच्चे थोडी दूर पर जाकर खड़े हो गये थे और बदरों को चिढा रहे थे। बदरवाला वहीं बैठा था। बदर और बदरिया खेल खत्म करके मदारी की पीठ के पीछे दुबक गये थे।

हालांकि सड़क पर अभी तक भीड़ नहीं हुई थी। बीच-बीच में दो-चार आदमी आते-जाते दिखलाई पड़ जाते थे। बीच-बीच में बच्चे चिल्लाने लगते थे—'बंदर के सिर पर दो रोटी, बंदर कहे मेरी माँ मोटी।'

बन्दर को उनकी बातों का कोई अन्दाज नहीं था। बीच-बीच में कान खड़े करके उनकी तरफ़ देख लेता था और बात खत्म हो जाने पर कान गिरा लेता था।

एक रिक्शा आकर रुकी। नीमा अधिक एकाग्र हो गई। रिक्शा से ढाबे का नौकर उतरा। उसका आदमी भी उसी में था। वह कभी पहले रिक्शा में घर नहीं आया था। वह निर्णय नहीं कर सकी कि उसे क्या करना चाहिए। वह हड़बड़ी में अन्दर चली गई और आँगन में जाकर दरवाजा खटखटाये जाने का इन्तजार करने लगी। आँगन उसे सिमटता हुआ-सा लगा। कमरे में अभी तक उसके सोने के कपड़े बिछे थे। उसने दौड़कर कपड़े समेट दिये और खड़ा हुआ पलंग बिछा दिया। आकर फिर आँगन में खड़ी हो गई। उसे लगा काफी देर हो गई है।

दरवाजा खटखटाने की आवाज़ आई तो वह दरवाजा खोलने के लिए गई। दरवाज़ा खोला तो उसका आदमी ढाबे वाले उस आदमी का सहारा लिये था। पाँव बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे। नीमा ने उस आदमी को देखकर सिर का पल्ला माथे तक खींच लिया।

उस आदमी ने ही कहा, 'पंडत को कल दोपहर से ही बुखार है। आ नहीं रहे थे, मैं ले आया। चला तक नहीं जा रहा। कल कुछ कहा-सुनी हो गई थी क्या पंडतानी ?'

वह चुप रही।

मुँह से हल्की-सी कराह निकलते-निकलते रह गई। वह आदमी बोलता रहा, 'ऐसा आदमी मिलना बहुत मुश्किल है पंडतानी। हम तो तुम्हारे पहले घर को भी जानते हैं। हमारा पंडत ऊँचा आदमी है।'

वह भागकर अन्दर गई और पलंग पर कपड़े बिछा दिये और स्वयं हटकर दरवाज़े के पीछे खड़ी हो गई। वह आदमी बहुत बोल रहा था। नीमा उसके सामने नहीं पड़ना चाहती थी। बोलता आदमी मारते आदमी

से ज्यादा मरखना होता है। पहले आदमी का उसने बिना मतलब ज़िक्र किया था। उसके बारे में उसे इस तरह बात करने का क्या हक था। उसका मन वैसे ही भारी था, उसकी बातों से और भारी हो गया। वह दीवार से और ज्यादा सट गई।

जब उसने उसे पलंग पर लिटाया तब भी वह अपनी उस खोहनुमा जगह से बाहर नहीं निकली। साथ वाला आदमी वहीं खड़ा-खड़ा बोला, 'पंडज्जी, मैं डाक्टर को बुला लाऊँ ?'

वह बड़ी मुश्किल से जवाब दे पाया, 'नहीं।'

'दवाई तो खानी ही पड़ेगी। अपनी जान से दुश्मनी ना करो पंडत। हमने तो जभी कहा था, सारी जिन्दगी टेर कर दी अब काहे के लिए ओखली में सिर देते हो। जब तुमने पंडतानी की लौंडिया के लिए रुपये भेज दिये तो काहे अपने मन का दुख बढ़ा रहे हो। उस आदमी को देखो, उसने लेकर रख लिये। एक बार भी मना नी किया। तुम्हें और पंडतानी को दस गाली भी सुनाई। जी में तो आया था साले इस पंडत महाराज का मुँह पटील दूँ। फिर चुप लगा गया। पंडतानी को ज्यादा बुरी-बुरी गालियाँ बक रहा था। गाली दी थी तो रुपये क्यों ले लिये ?'

नीमा और ज्यादा दीवार में घुसना चाहती थी। उसके हाथ-पाँवों में ज्यादा कँपकँपी थी। उसे लग रहा था, जोड़ों पर से खुले जा रहे हैं।

उसने फिर पूछा, 'किस डाक्टर को लाऊँ ? उस बंगाली को ले आऊँ ? बड़ा भला आदमी है। शुरू-शुरू में अपने ही होटल मे आया था। दो-तीन दिन होटल मे ही खाना खाया। कहता था माछ का झोल चाहिए। फिर एक दिन हमने कह ही दिया—ये होटल ऐसा-वैसा होटल नहीं। यहाँ तो धरम-करम और सुच से काम होता है। मछली-मुर्गा खाना हो तो किसी खालसा के ढाबे मे जाओ। वहाँ माछ का क्या आदमी का झोल मिल जायेगा। पैसे भी नहीं दे गया। सुना उसकी डाक्टरी अच्छी चल रही है। कुछ तो सरम करेगा।'

उसने आँखें बन्द किये-किये फिर गर्दन हिलाकर मना किया। नीमा का जी घबराने लगा था। यह आदमी भी चला जायेगा तो वह किससे डाक्टर को बुलवायेगी। हालाँकि उसकी बातों से नीमा का जी

पक गया था। उसे यह भी लग रहा था कि वह उसके सामने कुछ भी नहीं बोल पायेगी। गुस्से और दुख के मारे रो और पड़ेगी। फिर भी वह बाहर निकल आई और बोली,'किसी अच्छे डाक्टर को बुला लाओ'।

वह हँसा तो उसके बीच-मने पीले दांत निकल आये, 'यह हुई वा बात पंडतानी। अभी एक मिनट मे बुलाकर लाया। उसको बिसारकर हमारे पडत की सेवा करो। ऐसे आदमी की सेवा पीपल की सेवा जैसी है।'

उसने नीमा की आवाज सुनकर एक बार आँखें खोली। नीमा की तरफ देखा और बन्द कर ली। नीमा की आँखों से आँसू टपक गया।

वह आदमी मुडता हुआ बोला, 'अभी लाता हूँ पडतानी। इन पंडत के पास बनी रहियो। रात-भर बहुत दुख भोगा है।'

वह बाहर निकल गया तो नीमा दरवाजे की कुडी लगाकर लौट आई। उसका आदमी आँखें बन्द किये निढाल लेटा था। वह दबे पाँव गई। थोडी देर तक सिरहाने खडी होकर उसे देखती रही। उसके माथे पर बीच-बीच मे छोटी सलवटें पडती थी। एक बार उसके माथे को भी छूना चाहा लेकिन हाथ बढाकर वापिस लौटा लिया।

उसकी आँखें इतनी डबडबा आई थी कि दो दिखलाई पड रहे थे।

एकाएक उसने पूछा, 'नीमा, तुम्हारा बरत पूरा हो गया ?'

गला भरा होने के कारण एकाएक जवाब नही दे सकी। उसने दोबारा नही पूछा।

थोडी देर बाद नीमा ने ही पूछा, 'रात-भर क्यों नही आये ?'

बोलने के बाद उसे लगा, वह ठीक तरह नहीं पूछ पायी। बात को किसी और तरह कहा जाना चाहिए था। लेकिन तय नही कर पायी कि किस तरह कहती।

वह हल्का-सा बुदबुदाया। बोला नहीं। नीमा समझ नहीं पायी। अपनी बात ना कह पाने और उसकी बात ना समझ पाने की मजबूरी ने उसे असहाय बना दिया।

वह फिर बोला, 'मैंने बिटिया के इलाज के लिए रुपये भेज दिये...'

वह फिर अपने को कह पाने की समस्या में उलझ गई। उसने

जितना कहना या बोलना सीखा था वह उसे नाकाफी-सा लगा। वक्त निकल गया और बात रह गई।

थोडी देर तक दोनों खामोश रहे। खामोशी ने नीमा के मन की बंदिश को और बढ़ा दिया। उसे बार-बार लगता रहा पता नही वह क्या कह रहा होगा ? थोड़ी देर बाद वह अपने आप ही बडबडाया, 'रोटी ही हमारे पास थी'''

इस बार उसके बड़बड़ाने मे आवाज थी। नीमा ने झुककर पूछा, 'तुम क्या कहे जा रहे हो ? ज्यादा मत बोलो, तबीयत खराब है।'

चूंकि उसकी बातो का जवाब देना उसके लिए नामुमकिन हो गया था इसलिए सुनना भी उसके लिए मुश्किल होता जा रहा था।

'तुम्हे मुझसे बहुत तकलीफ होती है ?'

वह उठकर फिर दरवाज़े के पीछे उसी खोह मे चली गई। वहाँ उसे लगा वह अपने-आपको बचा सकेगी। उसने आँखें बन्द कर लीं। आखें बन्द करके उसने अपने अन्दर बढ़ती हुई असुरक्षा को रोकना चाहा।

'तुम रोटी खा लो।' वह बेहिसाब बोल रहा था।

उसकी बात ने उसे फिर असुरक्षित और स्वयं अपने ही सामने उजागर कर दिया था। उसे लग रहा था, घर में अब और कोई भी ऐसा स्थान नही है जहाँ वह अपने को छिपा सके। सभी बातें उसके पीछे-पीछे दौड रही थी। वह ढाबे वाला आदमी भी उसे बातो की ढलान पर खडा करके छोड़ गया था। उस पर से लुढककर वह कभी भी अपने खात्मे का सामने कर सकती थी। वह अपने-आपको कुचले जाने के लिए अन्दर ही अन्दर तैयार करने लगी।

'नीमा, पता नही, अब कुछ कर भी पाऊँगा या नहीं ''' डाक्टर को बुलाने की जरूरत नही।'

कुंडी बजी। वह दरवाजा खोलने के लिए दौड़ गई। धूप ठीक तुलसी के बिरवे पर पड रही थी। आधा सुनहरी था और आधा अपने जैसा ही। बहुत-सी पीली पत्तियाँ झरकर थाले में एक के ऊपर एक पड़ी थीं। उसके मन में आया सफाई करती जाये। लेकिन बाहर शायद

डाक्टर आ गया था ।

उसने कुंडी खोली तो ढावे वाला आदमी डाक्टर के साथ खड़ा था। वह ज़ोर-ज़ोर से बोलकर डाक्टर साहब को बता रहा था, 'नाव किनारे लगने को थी, पंडत ने उसे भी चढ़ा लिया'''किनारे आकर डगमगा गई। बहुत फरक है। कहाँ पंडत, कहाँ ये पंडतानी ?'

नीमा ने उसे घूरकर देखा, वह थोड़ा सकपका गया। पल-भर वह उसको उसी तरह आँखें खोले नाराज़गी के साथ देखती रही, फिर हट गई। वे दोनों अन्दर चले आये। उनके आगे बढ़ जाने पर भी वह कुछ देर खुले दरवाज़े के पास खड़ी रही। सड़क व्यस्त थी। लोग आ-जा रहे थे। सड़क काफ़ी लापरवाह मालूम पड़ रही थी। बंदरवाला अपना तमाशा लेकर चला गया था। बंदर का पेशाब और पाखाना ठीक दरवाजे के सामने पड़ा था। पाखाने में किसी का पाँव सन चुका था। सूखी रोटी के टुकड़े बचे पड़े थे जिन्हें मदारी अपने से बचाकर बंदरों को खिलाना चाहता रहा होगा।

किवाड़ों को सिर्फ़ उढ़ककर वह वापिस चली आई। कमरे के बाहर दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ी हो गई। ढावे वाला आदमी इस समय ज़रूरत से ज़्यादा चुप था। डाक्टर नीमा के आदमी को काफी देर तक जाँचते रहे।

उन्होंने पूछा, 'कब से बुखार है ?'

उस आदमी ने इधर-उधर देखा, फिर बोला, 'डाक्टर साहब, कल हमारे पंडत की'''लगता है'''उसी पहले वाले आदमी को लेकर कहा-सुनी हो गई'''

डाक्टर ने थोड़े दबंगपने से कहा,'इनकी घरवाली को बुलाओ, उन्हें पता होगा।'

'उन्हें क्या पता ? रहे तो रात-भर होटल में।'

नीमा अपने-आप ही अन्दर चली गई। उसी दरवाज़े के पीछे वाली खोह में समाकर खड़ी हो गई। वहीं से कहा, 'कल सवेरे सिर में दर्द था'''दुकान जाने को मना कर रहे थे।' रुककर बोली,'फिर चले गये।' 'रात-भर वहीं रहे।' वह टुकड़ों-टुकड़ों में बात कह रही थी।

डाक्टर ने पूछा, 'बुखार पहले से नही था ?'

नीमा, ने मना कर दिया, 'नही ।' डाक्टर ने कधे ऊपर चढ़ाकर छोड़ दिये ।

एक बार फिर आले से देखकर कहा, 'इनके फेफड़ों पर असर हो गया । एहतियात की जरूरत है ।' फिर ढाबे वाले आदमी से पूछा, 'रात तुम थे इनके पास ?'

'हाँ, हम नही तो कौन होगा ? हम तो तब से पंडत के साथ है जब से इन्होने होटल चलाया था ।'

'इनको खांसी आ रही थी ?'

'बुखार मे खांसी तो आती ही है । ये दोनो तो जुड़वाँ ही है, बुखार है तो खांसी है, खांसी है तो बुखार है ।' कहकर वह जानकारों की तरह हँस दिया ।

डाक्टर ने फिर स्टेथस्कोप लगाकर देखा और आँख बन्द करके काफी देर तक देखते रहे । उन्होने फिर पूछा, 'क्या खाँसी काफ़ी दिन से है ?'

'हाँ, कभी-कभी उठा तो करती थी ।' नीमा वही से बोली ।

'कही दर्द-वर्द होता था ?'

'यह तो कभी बताया नही ।'

'आपने कभी देखा, कैसा बलगम निकलता था ? सफ़ेद, पीला, पका हुआ···?'

उसने वही खड़े-खड़े गर्दन हिला दी ।

डाक्दर ने फिर पूछा, 'बलग़म बँधा हुआ गुठली-सा होता था या पतला ?'

'पता नही ।' इस बार वह बोली ।

'अच्छा, मैं दवा भेजे देता हूँ ।' फिर गंभीरता से बोले, 'बहुत एहतियात की ज़रूरत है । इनका बलग़म इकट्ठा करके रख लीजिये । टैस्ट कराना होगा ।'

डाक्टर साहब चलने लगे तो नीमा ने रुपये मुट्ठी मे दबा लिये । वही खड़े-खड़े पूछा, 'कब तक ठीक हो जायेंगे ?'

'दवा देती रहिये।'

डाक्टर साहब आगे चले तो वह दावे वाला पीछे ठिठक रहा। धीरे से बोला, 'पंडतानी, फीस।'

नीमा ने अपनी मुट्ठी उसकी हथेली पर खोल दी। फिर धीरे से बोली, 'दुकान पर कोई लड़का हो तो भेज दो।'

लेकिन वह झपटा चला गया।

डाक्टर की उपस्थिति में नीमा का आदमी कुछ नहीं बोला था। न बोल पाने का तनाव बार-बार उसके चेहरे पर उभर जाता था। वह वहीं की वहीं खड़ी थी। अपने आदमी की उपस्थिति में इतना भयावना सन्नाटा उसने कभी अनुभव नहीं किया था। बल्कि बीच-बीच में नीमा को लगने लगता था, सन्नाटा लेटे हुए उस आदमी के शरीर से ही उपज रहा है। वहाँ का पूरा वातावरण उसी के शरीर से ही झर रहा था।

उसने अपने आदमी के शरीर को छूना चाहा, पर उसका हाथ अपने आप उसके शरीर पर से हट गया। शरीर का इतना ताप उसने पहली बार अनुभव किया था। शरीर के ताप ने नीमा को और अधिक विचलित कर दिया। उसने धीरे से पुकारा, 'सुनो।'

वह बोला कुछ नहीं। उसकी भवें थोड़ी खिंची, फिर यथावत हो गईं। नीमा को लगा, वह आँखें खोलना चाह रहा है लेकिन खोल नहीं पा रहा है। नीमा ने अपने को समझने और कहने तक लाने की कोशिश की। निरंतर बढ़ते हुए ठहराव से वह मुक्त होना चाहती थी। डाक्टर के पूछने पर जब उसने अपने आदमी के बारे में बताया था कि कल सवेरे से उनके सिर में दर्द था — दुकान जाने को मना कर रहे थे— फिर चले गये, तब आखिरी बात कहते हुए जिस भाव ने उसे घेर लिया था वह अभी तक बना हुआ था। उस समय भी उसके चले जाने की सफाई उसके दिमाग में थी और इस समय भी थी। इसी तरह की और कई बातें दलदल में उठते बुलबुलों की तरह उसके मन में उठकर फूट रही थीं। उस दलदल में वह नीचे-नीचे उतरते जाना लगातार अनुभव कर रही थी। बचने का कोई तरीका नहीं था।

उसे एकाएक ख्याल आया, सवेरे से ही उसने 'अपने आदमी का

इंतजार करना शुरु कर दिया था। जब वह आया तो उसकी तबियत खराब थी। डाक्टर के जाने के बाद से वह और अधिक बीमार हो गया है। वह कुछ भी नही कर सकी। अब वह अस्वस्थता के बीच बुरी तरह घिर गई है। वह चाय का ख्याल तक नहीं ला पायी। अब जब चाय का ख्याल आया तो यह फैसला तक कर पाने मे असमर्थ कि पिये या ना पिये। अगर नहीं पियेगी तो क्या वह अपने को सँभाले रह सकेगी।

वह दरवाजे पर खड़ी होकर आँगन मे दिखने वाले इत्ते ऊँचे आसमान और ऊपर तक उठे ऊँचे मकानों को देखने लगी। उसके घर के दायें-बायें सब ऊँचे ही ऊँचे मकान थे। उस दिखने और महसूस होने वाले पूरे वातावरण में वह स्वय अनहुई-सी हो गई। धूप कुछ ऊँचे-ऊँचे मकानों की अटारियों पर चन्दन के तिलक की तरह चिपकी थी। सब नीचाइयाँ ऊपर वाली धूप के असर से ही उभर आई थीं। उसका आँगन क्योंकि बहुत गहराई में था इसलिए उन सब धूप से ढकी अटारियों के मुकाबले अँधेरा और डूबा हुआ-सा लग रहा था। यह उसकी स्थायी कसक थी। जिस पहले मकान मे वह रहती थी वह भी इसी की तरह कोने का सीलन भरा, अँधेरा मकान था। यह मकान उससे कहीं ज्यादा खुला और बड़े आँगन वाला था। पूरा आसमान सिमट आता था। सीलन के कारण बिटिया हमेशा बीमार रहती थी। अब फिर ... शायद उसी वजह से बीमार हुई हो।

वह दरवाजे से हटकर फिर अपने आदमी के पलंग के पास चली आयी। होंठ धीरे-धीरे हिल रहे थे—बिटिया के लिए उसने रुपये क्यों भेजे? वह मरती या जीती। उसने कहा ही क्यो? उसने रख क्यो लिए? उसकी नाक क्यों कटवायी? रख लेने के बाद गालियाँ दी। वह कैसा आदमी है? ये दोनो ही आदमी कैसे है? रुपये भेजकर चोट पहुँचाना चाहता था या सुख? सुख कैसे पहुँचता — बिटिया माँ के सामने भिखारिन बन गई। इस समय ये सब कहने की बात नही।

आदमी अपने को जबरदस्ती औरत की जिन्दगी का इतना कच्चा हिस्सा बना लेते हैं कि उसे काटा नहीं जाता। उसमे कटने मे अपने को ही काटना पड़ा।

दरवाजे की कुंडी बजी। ढाबे वाला आदमी लौट आया था।

'शायद दवा ले आया।'

दरवाजे पर वही ढाबे वाला आदमी था। एक बार वह झिझकी, फिर नीमा ने हाथ बढ़ा दिया। दवा पकड़ाकर बोला, 'पंडतानी, मैं होटल जा रहा हूँ। गाहकों के रोटी-पानी का बखत हो रहा है। मुझे नहीं पायेंगे तो गाहक दूसरे होटल में चले जायेंगे। और तो खालसा होटल से मँगाकर सब्जियों में शोरवा डाल देते हैं। लोग समझते हैं बड़ी बढ़िया सब्जी है,'—फिर हँसकर बोला, 'यह पता नहीं जबान के जोरों अपना धरम-करम गवाँ रहे हैं। रोटी की भी बात है। ऐसी रोटी सेकता हूँ देखकर लोग खिंचे चले आते हैं। फूँक मारो तो उड़ जायें। बाल नहीं, बच्चा नहीं। जोरू नहीं, जाता नहीं। किसके लिए करना है। बस इसी काम में जिन्दगी लगा दी। भगवान की किरपा से अब नाम भी हो गया। कई होटल वाले बुला चुके हैं पर पंडत से हमारा मन मिला है।'

नीमा खड़े-खड़े एकाएक परेशान हो उठी थी। उसका आदमी अंदर अकेला था। वह मिमियाती हुई बोली, 'कैसे देनी है?'

'तुम तो हरफ चिन्ह लेती हो ना पंडतानी।'

'हाँ नागरी के?'

'इस पर डाक्टर ने लिख दिया है। तुम जानो हम पढ़े ना लिखे। ना कुछ याद ही रहवे। डाक्टर के कंपोटर से लिखवा दिया।'

'दुकान से किसी लड़के को भेज देना।'

'अरे ये ससुरे लड़के बड़े बदमास हैं। ना हाथ के पक्के और ना लँगोट के। इनका क्या इतबार। तुम कहो तो रोटी बना-खा के मैं ही आ जाऊँ?'

नीमा को अच्छा नहीं लगा। वह बोली, 'नहीं, दुकान पर भी एक बड़ा आदमी चाहिए। किसी लड़के को भेज सको तो भेज दो। बाहर बैठा रहेगा।'

'लड़का ही चाहिए तो लड़का भेज देंगे या हम चूल्हा उठवाकर आ जायेंगे। जो हम सेवा और मदद कर सकते हैं, आज कल के लौंडे-

लपाड़ी नहीं कर सकते। हमारा ये पंडत पुराना आदमी है पर बहुत सीधा…।'

नीमा अन्दर की तरफ मुड़ गई। वह बोला, 'अच्छा पंडतानी, हम जाते हैं।'

नीमा ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। दवाओं के ऊपर लिखा पढ़ने की कोशिश करने लगी। उसका चेहरा भुरभुरा रहा था। आँखें ऐसी हो आई थीं कि सीधे आग के सामने बैठ कर आई हो।

एक लाल गोली उसे फौरन दे देनी थी। उसने गोली को मुट्ठी मे दबा लिया। बाकी दवाएँ आले मे रख दी। आदमी धीमे-धीमे बड़बड़ा रहा था, 'मैं चला जाऊँगा…तुम भी चली जाना।'

हाथ मे पानी का गिलास लेकर बोली, 'दवा ले लो।'

उसने थोड़ी मुश्किल के साथ आँखें खोली। आँखें खुलते ही उसे लगा कि उनकी जगह ताज़े कटे हुए मांस के टुकड़े है। उसने फिर बन्द कर ली और चुप हो गया।

नीमा डूबने-सी लगी। एक मिनट वह दीवार के सहारे खड़ी रही। उसने फिर हिम्मत की। एक हाथ उसकी पीठ के नीचे लगाकर उठाना चाहा। सारे शरीर की ताक़त उसकी बाँह मे सिमट आई। बुरी तरह उसकी हँफनी छूट गई। तब कही वह थोड़ा-सा उठा पायी। ज़ोर से बोली, 'दवा ले लो।'

उसने फिर आँखें खोली। इस बार पीछे होने के कारण वह उसकी आँखें नही देख पायी। लेकिन उनके खुलते ही समझ गई वे अभी भी उतनी ही सुर्ख होंगी।

दूसरे हाथ से उसने गोली बढा दी। उसने गोली मुँह मे अपने आप ही रख ली। पानी का गिलास नीमा ने मुँह से लगा दिया। बड़ी मुश्किल से दो घूंट पानी पी पाया। वह फिर लेट गया। उसके लेट जाने पर नीमा थोडी देर तक हाँफती रही। उसका सांस काफी फूल गया था।

दवा देने के बाद उसे फिर ख्याल आया उसने चाय तक नहीं पी है। नहाकर, ठाकुर जी के सामने हाथ जोड़कर ही चाय पी सकती थी।

चाय के साथ थोड़ा बहुत खाकर ही वह दिन-भर जुटी रह सकती थी। उसे अकेले ही खटना था। दूसरे की मदद के नाम पर उसके सामने वही अकेला और जवांजोर आदमी आया। उसके बारे में वह कतई भरोसा नहीं सँजो पा रही थी। पता नहीं वह कैसी सेवा और मदद करना चाहता है। कमरे से निकल वह रसोई की तरफ जाने को हुई तो उसका आदमी एकाएक चिल्लाया, 'नीमा, उल्टी....।'

जब तक दौडकर अन्दर पहुँची उसे बहुत जोरदार उल्टी हो गई थी। सारे कमरे मे छीछड़े बिखर गये थे। कमरे मे इतनी ज्यादा बदबू भर गई कि नीमा के लिए खड़े रहना मुश्किल हो गया। वह उल्टी के बाद छोटे बच्चे की तरह असहाय होकर लेट गया। नीमा ने उसका मुँह साफ किया। वह आँखें बन्द किये उसी तरह चुपचाप लेटा रहा।

उसने उल्टी साफ़ की तो वह अपने को यह सोचने से रोक नहीं पायी कि अन्दर की गन्दगी बाहर निकलकर कैसा रूप धारण कर लेती है? गोली बदशक्ल होकर बाहर निकल आयी थी और वह अलग छटककर सनी पड़ी थी।

दवा के बाहर निकल आने ने उसे चिन्तित कर दिया। दवा अन्दर नहीं रुकेगी तो वह ठीक कैसे होगा?

उल्टी साफ़ करने के बाद नीमा का मन इतना घिना गया कि उसके पास नहाने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नही था। लेकिन वह उसे अकेला किस पर छोड़कर नहाने जा सकती थी? रसोई-घर में नहाना होता था। वह थोड़ा दूर पडता था। दरवाज़ा बन्द करना भी जरूरी था। खस्सी पर बैठकर सिर्फ दो लोटे डालने थे। उसने नहाते समय दरवाज़ा बन्द न करने का फैसला किया। अगर वह पुकारे, जल्दी-से-जल्दी पहुँच तो जाये। वह नहाने चली गई।

बाल्टी रखकर उसने जल्दी-जल्दी कपड़े उतारे। हालांकि नहाते वक्त कुल कपड़े उतारना उसे अच्छा नहीं लगता था, लेकिन कपड़े धोने का वक्त नही था। उसने कपड़ो को बिना वजह भिगाना उचित नहीं समझा। नीमा कपड़े उतारकर बाल्टी के सामने उकड़ूँ बैठी तो उसका फैला हुआ नंगापन सिकुड गया। उसने एक के बाद एक गदागद कई

लोटे एक-साथ डाले और खड़ी होकर बदन पोंछने लगी। उसके कान बराबर उधर ही लगे रहे। वह पुकार ना ले। उसका ध्यान खुले दरवाज़े और अपने नंगेपन की ओर से पूरी तरह हट गया था। वह लगातार आवाज की तरफ ही लगी थी। उसने पेटीकोट और ब्लाउज़ पहनकर बाहर झाँका। वहाँ से किसी तरह की कोई आवाज नहीं आ रही थी। उसने जल्दी से धोती लपेटी। उसकी तबियत नहाते ही हल्की हो गई थी। उसकी भँवों पर जो तनाव आ गया था वह भी धुला-धुला लगने लगा था।

सबसे पहले वह उसे ही देखने गई। वह उसी तरह बेसुध लेटा था। बीच-बीच में उसके होंठ हिलने लगते थे। उसके होंठों के हिलने से नीमा की परेशानी बढ़ जाती थी। वह असमर्थता से भर जाती थी। उसकी बात वह क्यों नहीं समझ पा रही। वह कहना चाहता है और कह भी रहा है, लेकिन उन दोनों के बीच कहने को समझने का सम्बन्ध बन नहीं पा रहा। एकबारगी उसने उसके होंठों के हिलने से ही उसकी बातें समझने की कोशिश की। लेकिन आवाज के न होने की वजह से उसके आदमी की बात उसी के अन्दर बनी रही। वह ठाकुरजी के सामने गई और दोनों घुटने टिकाकर माथा उनके सामने टेक दिया। सीधी होने पर उसे अपना मन कुछ हल्का होता महसूस हुआ। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके अन्दर की बात ठाकुर जी तक कैसे पहुँच गई जबकि उसके आदमी की बात होंठ हिलने के बावजूद उस तक नहीं पहुँच पा रही। अनकही बिना आवाज की बात ठाकुरजी तक पहुँच जाने के विश्वास से उसका मन भर गया। उसे लगा वह उन तक सब-कुछ पहुँचाकर निफराम हो गयी है। फिर वह पलौथी लगाकर आँख बन्द करके उसी तरह बुदबुदाती रही जिस तरह उसका आदमी बुखार की हालत में बुदबुदा रहा था।

पूजा कर लेने के बाद उसने अपने आदमी के पास जाकर धीरे-से कहा, 'एक कटोरी दूध ले लो। कल दोपहर से पेट मे कुछ नहीं गया।'

उसने फिर आँखें खोलीं। आँखें खुलने पर उसे वैसा ही डर लगा जैसा पहले लगा था। हालांकि वे खून-निचुड़े माँस के टुकड़े मात्र रह गई थीं। उनमें इतनी रिक्तता थी जिसे देखकर जिन्दा आदमी का अह-

सास मुश्किल से बन पा रहा था। उसने पहले गर्दन हिलायी, फिर कुछ कहने का प्रयत्न किया, लेकिन उसे खाँसी उठने लगी और साँस फूल आया। वह चुपचाप खड़ी देखती रही। उसने खाँसते हुए उसके सीने पर हाथ तक नही रखा।

खाँसी कम हुई तो उसने पूछा, 'चाय ले आऊँ ?'

वह इस बार कुछ नही बोला।

नीमा रसोई में जाकर चाय बनाने लगी। उसके नहाने के बाद का गीलापन रसोई के खस्सी वाले हिस्से पर काफ़ी चमक रहा था। उसके उतारे हुए कपड़े एक छोटा-सा ढेर बने पड़े थे। नहाते हुए से अब वह बिल्कुल भिन्न थी। नंगेपन के बाद कपड़े पहन लेने पर शायद सभी को एक भिन्नता का अहसास होता है। उसे भी विश्वास नही हो रहा था कि नहाते वक्त उसकी असलियत दूसरी थी। उसने उतरे हुए कपड़े एक तरफ बाँध कर रख दिये। रसोई मे बना वह ढेर खत्म हो गया और एक समतलता आ गई। गीलापन अलबत्ता चमकता रहा।

वह कटोरी मे रखकर चाय का एक गिलास उसके पास ले गई। उसकी बेचैनी काफी बढी हुई थी। बीच-बीच मे खाँसी आ रही थी। खाँसते वक्त उसका चेहरा खिचकर एक जगह सिमट आता था। तक-लीफ अन्दर से बाहर की तरफ बहने लगती थी। उसने जाकर कहा, 'चाय पी लो, कुछ आराम मिलेगा।'

उसे फिर खाँसी का दौरा उठा। सारी शक्ति चुस गई और दयनीयता उभर आयी। उसने हाथ का सहारा देकर उसे बैठाने का प्रयत्न किया। वह उठकर भी खाँसता रहा। नीमा ने उसके पीछे कपड़ो की एक गठरी लगा दी। उसके सहारे कुछ देर बैठा खाँसता रहा। वह उसे हाथ मे चाय लिये देखती रही। खाँसी कम हुई तो नीमा ने कटोरी में चाय डँडेलकर धीरे से कहा, 'लो, चाय की घूंट भर लो। पेट मे कुछ तो जाना चाहिए।'

उसने जरा-सा मुँह खोल दिया। नीमा ने कटोरी मुँह से लगा दी। वह बीच-बीच में खाँसता रहा और चाय भी पीता रहा। चाय पीने का सकून उसके चेहरे पर हर घूंट के बाद उभर आता था। लेकिन खाँसी

उठते ही उस सकून की जगह तकलीफ ले लेती थी। वह आधा गिलास चाय पी सका, फिर निढाल होकर लेट गया। उसके चेहरे से लग रहा था वह अन्दर ही अन्दर घुलनशील हो गया है और घुलता जा रहा है। नीमा को आश्चर्य था एक ही रात में इतना कैसे घुल गया ?

वह चाय का बचा हुआ आधा गिलास लेकर रसोई में चली गई। माँजकर उसी गिलास में उसने अपनी चाय भी उँडेल ली। तुलसी के विरवे के सामने जाकर हाथ जोड़े और चाय पीने लगी। चाय ने उसके बढ़ते हुए तनाव को रोका। दिन कुछ टिकता हुआ-सा लगा। अभी तक वह पारे की गोली की तरह हिल रहा था। उसकी नज़र उन मकानों की अटारियो पर गई जिन पर धूप चन्दन बनकर लग गई थी। अब वे अटारियाँ आधी-आधी धूप में डूब गई थी। उसके आँगन के एक कोने में धूप फूटने से पहले का पकापन नज़र आने लगा था। वह इस बात से संतुष्ट थी कि धूप आने वाली है।

एकाएक उसे उबकाई लेने की आवाज़ सुनाई पड़ी। गिलास में दो-तीन घूँट चाय बाकी थी। वह गिलास को वहीं जमीन पर रखकर अन्दर की तरफ भागी। उसने फिर उल्टी कर दी थी। इस उल्टी में उतनी बदबू नही थी। लेकिन लाल छीटे थे। नीमा को अपने हाथ-पैर ठंडे होते महसूस हुए, लेकिन वह उसके पीछे खड़ी होकर पीठ को धीरे-धीरे सहलाने लगी। उबकाइयाँ उसके अन्दर से आ रही थी। बार-बार लगता था कोई बगूला उठता है और आँतों को बाहर तक खींच लाता है। एक बार फिर उल्टी हुई। उसमें चाय के साथ लाल-लाल रेशे भी निकल आये।

वह बहुत धीरे-धीरे बुदबुदाया, 'नीमा, मैं मर रहा हूँ। तुम ना होती तो मैं क्या करता।'

नीमा के हाथ उसके शरीर पर कस से गये। वह कुछ कह नही सकी। उसने चाहा बहुत कि वह कुछ कहे। हिम्मत बँधाये। लेकिन उसे कुछ सूझ ही नही पड़ा। कुछ कहती तो हो सकता था वह खुद रो पडता। उसे फिर उबकाई आई। उसने दवाओं की तरफ़ देखा। एक नीली-सी गोली उठाकर उसे देने लगी।

उसने गर्दन हिलाकर मना कर दिया, 'नहीं।'

नीमा ने कुछ कहना चाहा। लेकिन उसे फिर वही लगा, आखिर क्या कहे?

वह दौड़ी-दौड़ी बाहर आई। दरवाजे पर खड़े होकर किसी ऐसे आदमी का इन्तजार करने लगी जिसे वह पहचानती हो या उसे ऐसा लगे कि वह काम कर देगा। लेकिन उसे वही लगा—अजनबी चेहरों की एक लम्बी कतार बच्चों के खिलौनों की तरह स्वत: खिसकती चली जा रही है। वह फिर अन्दर चली गई। तुलसी के बिरवे के पास जाकर उसने दोनों हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसा ली और दो आँसू उस थाँवले में टपका दिये।

वह पस्त पड़ा था। उसने उल्टी साफ की। उसकी अपनी तबीयत भी मालिश करने लगी। सूखी-सी एक उबकाई भी आयी। लेकिन उसका ध्यान उल्टी में मिले खून के रेशों पर बार-बार जा रहा था। उनकी मात्रा बहुत अधिक थी। उल्टी साफ करके उसका मन फिर नहाने को हुआ। लेकिन उसके पास ना तो इतने कपड़े ही थे कि वह बदल सके और ना यही पता था कि अभी कितनी बार उल्टी साफ करनी होगी। उसे बिटिया का ध्यान आया। जब उसके दाँत निकल रहे थे तो बार-बार उसका पाखाना साफ करना पड़ता था। तब क्या वह हर बार नहाती थी? नीमा को उसका चेहरा बिटिया की तरह मासूम, निढाल और पीला-पीला लगा। वह उसके पास गई और माथा सहलाने लगी।

उसने आँख खोलकर देखा। उसकी पुतलियाँ नरम रुई के गाले की तरह हो गई थीं। चेहरा झुरझुरा गया था। नीमा ने झुककर कहा, 'दवा खा लो, नहीं तो तबीयत कैसे ठीक होगी?'

उसने गर्दन हिलाते हुए बड़ी कठिनाई से कहा, 'नहीं, मेरा साँस अन्दर नहीं समा रहा। मैं बचूँगा नहीं, नीमा।'

वह बहुत रुँधे हुए गले से बोली, 'मैंने तुम्हारा जी बहुत दुखाया है ... ऐसी बात ना कहो।'

नीमा के आदमी की आँखों से आँसू टपक गए।

'मैं डाक्टर को बुला कर लाती हूँ, तुम घबराना नहीं।'

'अब डाक्टर क्या करेगा ?' उसकी आवाज़ में कमजोरी थी। साँस उखड़ जाने के कारण उसका बोलना बीच-बीच में छितरा जाता था।

'नहीं, मैं देखकर आती हूँ।'

'यहीं बैठ जाओ'''मेरे पास ''कुछ पता नहीं। बहुत जकड़न है। सहला दो।'

'मलने के लिए डाक्टर ने तेल भेजा है। उसे मल दूं ?'

'मल दो।' उसने हताशा के साथ बुझी आवाज़ मे कहा।

वह तेल लेने के लिए उठी। बाहर उस कोने मे धूप फूट आई थी। आँगन के उस कोने तक पहुँचने वाली धूप की किरणें बिरवे की चोटी को छूती हुई निकल रही थी। पत्तो पर धूप केवल छिड़क-सी गई थी। उसने याचना-भरी नज़र से तुलसी के बिरवे की तरफ़ देखा। उसे लगा उसने तुलसी के पत्तों पर धूप को इस तरह बिखरे हुए पहली बार देखा है। उसके मन मे आशा का संचार हुआ। उसे लगा पत्तों के ऊपर नई तरह से छिटकी हुई धूप इस बात का शकुन भी हो सकती है कि उसका आदमी ठीक हो जाएगा।

तेल मलते हुए नीमा को उसके शरीर के वास्तविक ताप का अहसास हुआ। इतना गर्म ! उसका सीना बीच-बीच में धौंकनी बन जाता था। कभी ऐसा होते नहीं देखा था। उसकी धड़कनें भी कुछ जल्दी मे थी। उसने अपने अंदर आशा को बाँधे रखने के लिए फिर बाहर झाँककर देखा कि तुलसी के बिरवे पर धूप कहाँ तक उतर आई है। वहीं रुक गई थी। दूसरो की अटारियाँ ज़रूर आधी से ज्यादा डूब गई थी। धूप तुलसी के पत्तो तक ही क्यो रह गई ? जब धूप उस पर टिकी थी तो नीचे तक क्यो नही आई ? उसका मन शंकित हो उठा और बेचैनी बढ गई। उसने तेल और ले लिया और ज्यादा ज़ोर से मलने लगी।

मलते-मलते लगा वह सो गया है। तेल मलने से उसे आराम मिला। नीमा ने बहुत धीरे से हाथ खीच लिया। उसकी आँखें खुल गई और वह नीमा की तरफ देखने लगा। वे एक बड़े होते हुए बच्चे की तरह बोल रही थी। जैसे बच्चे को किसी अजनबी जगह छोड़ा जा रहा

हो। नीमा को डर-सा लगने लगा।

उसने फिर आँखें बन्द कर ली। नीमा को लगा बातें फिर बन्द हो गईं। सम्पर्क टूट गया। वह आँखें बन्द किये ही किये धीरे-से बोला 'तुमने कुछ खा लिया, नीमा ?'

वह एकाएक कुछ कह नही सकी।

'जाओ, कुछ खा लो।'

वह फिर भी चुप रही। उसकी साँसें असंतुलित मौसम की तरह इधर-उधर होने लगी। कहने से पहले वह अपने को सँभालता था, तब बोलता था।

उसने फिर बुदबुदाते हुए कहा, 'तुमने कल भी नही खाया था। रोटी से मत नाराज हुआ करो।' अपने को सँवारने के लिए रुका, फिर बोला 'भगवान ने यही तो दी है। पता नही....' उसे खाँसी आ गई। उसका साँस खिचने-खिचने को हो आया।

नीमा घबरा गई। वह बार-बार कभी उसका सिर और कभी उसकी पीठ सहलाने लगी। उसकी पीठ को सहारा देने की कोशिश की, सीने पर हाथ रखा। उसने खाँसते ही खाँसते फिर कहा, 'तुम कुछ खा लो। मैं बहुत भूखा रहा हूँ, किसी को खाते देखकर मुझे चैन मिलता है।'

बड़ा ज़ोर लगाकर कह पायी, 'अभी खा लूँगी।'

उसका खाँसना जारी रहा। खाँसते-खाँसते भी उसके चेहरे पर एक तरह का हल्कापन आता जा रहा था। बहुत धीरे-धीरे उसकी खाँसी बैठी। वह अपने साँस को काफी देर तक साधता रहा। साधने में उसे काफ़ी जोर पड़ रहा था। नीमा की आँखों से लग रहा था सारी शक्ति उसकी आँखों मे है। वह देखे जा रही थी।

उसने फिर कहा, 'मेरा कुछ पता नही....'

इस बार नीमा की आँखों से आँसू निकल आये। इत्तफाक से उसके आदमी की आँखें बन्द थी। नीमा ने आंचल से पोछ लिये।

कुछ देर बाद वह फिर बोला। उसके बोलने से लगा वह किसी बहुत बड़े पत्थर के नीचे दबी हुई अपनी आवाज़ को निकालकर [बोल पा रहा है। बहुत धीरे-धीरे और वक्फे के साथ शब्द निकल रहे थे।

'मुझे कुछ हो जाय तो ... तुम अपनी बच्ची के पास चली जाना।'

नीमा की समझ मे नही आया वह क्या करे। एकाएक ज़ोर से रो पड़ी। नीमा का रोना और उसका साँस फूलना सम पर आ गया था।

'रोओ नही नीमा ··· तुम्हारी बच्ची ठीक है। पता नहीं मैं तुम्हारे लिए कुछ करने लायक हो सकूँगा या नही ··· ?'

वह बोलने की ज्यादती कर रहा था। साँस में संतुलन आता था, फिर बिगड़ जाता था। इस बार उसे फिर उबकाई आई। नीमा ने अपने दोनों हाथ फैला दिये। उल्टी में सुर्खी थी। वह उसे फेंकने बाहर चली गई। उल्टी के बाद उसका आदमी हल्का-हल्का कराहता हुआ निढाल हो गया।

हाथ धोकर वह बाहर वाले दरवाज़े पर खड़ी हो गई। फिर वही सपाट चेहरे जिनकी कोई पहचान उसके पास नही थी। वे सब रौ में बहते हुए झाड़-झंकाड़ों की तरह धू-धू वह रहे थे। वह फिर लौट आई।

उसकी बेचैनी बढ़ गई थी। वह बहुत बोला था।

वह ही आ गया होता। आदमी चाहे जैसा भी हो डाक्टर को तो बुला लाया था। उसका वह कर ही क्या सकता है। हो सकता है वह उसकी नजर में गिरी हुई हो पर उससे क्या मतलब। ऐसे हालात में दूर-पार का आदमी इसके सिवा सोच भी क्या सकता है।

नीमा ने दूसरी गोली देनी चाही, वह मना करने लगा। लेकिन उसने खुशामद-दरामद करके उसके मन के विरुद्ध खिला दी। हो सकता है इसी से उसे कुछ आराम मिल जाए। पेट तक पहुँच जाय, कुछ तो गुन करेगी। गोली देकर वह फिर दरवाज़े पर जा खडी हुई। सडक के उस अजनबीपन से वह फिर घिर गई। उसका किसी तरह उबार नही था।

वह और निढाल और चुप हो गया था। उसने छूकर देखा। शरीर उसी तरह गर्म और ठहरा हुआ था।

उस गोली ने उसे सुस्त कर दिया था। बीच-बीच में बिना इस अहसास के खाँस रहा था कि उसे खाँसी आ रही है। अब उसको खाँसते देखकर यह नही लग रहा था कि पहले की तरह खाँसी उसके अन्दर

दर्द की तरह उठ रही है। अब वह दर्द ठंडा पड़ गया था।

दोपहर ढलान पर आ बैठी थी। किसी भी वक्त नीचे की तरफ फिसलना शुरू कर सकती थी। नीमा अभी तक खाने-पीने का कोई प्रबन्ध नही कर पायी थी। उसका आदमी ठीक-ठाक होता तो दुकान से खाना आ गया होता। इस वक्त वह खाना बनाने का धंधा लेकर नहीं बैठ सकती। उसके आदमी को यह तक पता नही कि वह खुद कहाँ है। बीच-बीच में उसे अलबत्ता ध्यान आ जाता था कि नीमा दो दिन से भूखी है। ध्यान आते ही वह अपने अन्दर से उभरकर उसे खाना खाने के लिए कहने लगता था।

दोपहर देखते-देखते फिसल गयी। सामनेवाले घरों की अटारियाँ बिल्कुल सूनी हो गयी। धूप की चादरें उतार ली गयी थी। उनमे एक तरह का सूखा एवं नगापन आ गया था। उसके आँगन का वह कोना जो काफी देर तक पकता रहा तब कही जाकर धूप फूटी थी, अब खाली हो गया था। पन्नी उतर जाने के बाद सरेस का-सा निशान उस जगह बाकी था।

दरवाज़े की कुंडी कई बार खटकी तो वह समझ पायी उसी का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है। वह दौड़ी गयी। ढाबेवाला आदमी आ गया। दरवाजा खोलते ही उसने कहा, 'कहो पंडतानी'''।'

वह एकाएक घूम गयी। पीठ फेरकर पल्ला सिर तक खिसका लिया। नीमा को उसका इस तरह बोलना पसन्द नही आया।

वह हँस दिया और बोला, 'अरे पडतानी'''!' उससे आगे वह या तो बोला नही या बोल नही सका।

'अरे पडतानी'''' के जरिये उसने जो कुछ कहा था नीमा बडी मुश्किल से अनसमझा कर पायी।

'पंडत कैसे है?'

इस सवाल पर मन हुआ उसी के सामने रो दे। लेकिन उसके सामने रोने मे उसे लगा वह एक ग़लत स्थिति पैदा कर देगी।

नीमा ने अपने स्वर को साधकर कहा, 'कई उल्टियाँ हो चुकीं'''।'

हालांकि नीमा उससे एक कोण बनाकर खड़ी थी। वह बहुत ध्यान से उसकी तरफ़ मुख़ातिब था।

नीमा ने बात की दूसरी किश्त में अपने को पूरी तरह सँभाल लिया। 'लगता है खून भी आया है।'

उसे फिर रुक जाना पड़ा। वह काफ़ी देर चुप रही। सँभलकर बोली, 'लगातार खांसी उठ रही है और सांस फूल रहा है'''डूबे हुए से पड़े हैं। डाक्टर को बुला लाओ।'

वह चुपचाप चलता रहा। उसका चेहरा उतना गमगीन नही हुआ था जितना हो जाना चाहिए था। चेहरे से लगा उसके चेहरे को या तो इस तरह एकाएक ग़मगीन हो जाने की आदत नही जैसी कि अमूमन होती है या जानकर होना नही चाहा।

वह बोला, 'सवेरे मुझे डाक्टर को बुलाने और दिखाने में वहां देर हो गयी। सारे दफ़्तरवाले लोग बराबर के ढाबे में चले गये। कम पैसे मिले।' उसने कुछ मुड़े हुए नोट निकालकर नीमा की तरफ बढा दिये, 'लो, ये पडत के इलाज-मालजे के लिए है।'

उसने रुपये ले लिए। रुपये हाथ में लेते ही उसे लगा कि वे दवा हो गये है और वे जब चाहे जो हो सकते है। उनका होना ही असल बात है।

कमरे में जाकर वह जोर से बोला, 'कहो पंडत, बोल गये! तुमने तो कभी इस तरह मुंह नही बाया। ये तुम्हारी पंडतानी गैया की तरह डकरा रही है। लाये हो तो इसको निबाहो।'

उसने बड़ी मुश्किल से आँखें खोली। वे फिर उतनी ही सुर्ख थी। वह बोल नही पाया। सिर्फ़ हाथ हिला दिया। उसकी आँखों की कोर भीग गयी।

वह बोला, 'सवेरे तुम्हे दिखाने के चक्कर मे लग गया तो गाहक निकल गये। रुपये पंडतानी को दे दिये है।'

उसने हाथ के इशारे से बुलाया। धीरे से पूछा, 'इसने रोटी खा ली?'

नीमा उसकी तरफ पलटी तो उसका दिल उसकी आँखों की तरह

ही भरा था। जोर से गर्दन हिलाकर फुसफुसायी, 'कह दो—हाँ।'

हालाँकि वह एक भी बात समझा नहीं, पर उसके मुँह से अपने-आप निकला, 'हाँ!'

उसका चेहरा एकदम खुल गया। आँखों की सुर्खी ढल गयी। कुल मिलाकर वह सहज हो गया। दूसरे ही क्षण फिर उसका चेहरा घिरने लगा।

नीमा ने कहा, 'डाक्टर को बुला लाओ। इनकी तबीयत बहुत खराब है।'

ढाबेवाले आदमी ने फिर उससे पूछा, 'डाक्टर को बुला लाऊँ?'

उसने हाथ हिला दिया, 'नहीं।' फिर बुदबुदाया, 'डाक्टर को बुलाकर ही क्या होना है।'

नीमा नाराजगी से बोली, 'उनसे क्या पूछना!'

वह मुस्कराकर बोला, 'पंडत को पंडतानी का ख्याल होना तो ठीक है पर यहाँ तो पडतानी के मन में इतनी चाहत है...' और खिस्स से हँस दिया। नीमा अन्दर तक सूख गयी।

बाहर निकलता हुआ बोला, 'पंडतानी, पहला पंडत मिला था। बिटिया के बारे में कह रहा था अब ठीक है। तुम्हारा जिकर भी कर रहा था।'

उसका मन पूछने को हुआ—क्या? लेकिन चुप लगा गयी। वह चला गया तो दरवाजे की चौखट पर बैठकर धीरे-धीरे सिसकने लगी। अपनी जान में सिसकियाँ दबाने की बहुत कोशिश कर रही थी। लेकिन ढलते हुए दिन के कारण उसकी सिसकियाँ उन्हीं अटारियों तक उठती महसूस हो रही थी जहाँ से अब धूप उतार ली गयी थी। दिन का गाद की तरह बैठना और बैठे अँधेरे का धीरे-धीरे ऊपर आना नीमा को उसी की देहली पर दबोचता जा रहा था। उसे हर ध्वनि की अनुगूँज सुनाई पड़ती थी। यहाँ तक कि आँख से टपका हुआ आँसू भी उसके अंदर गूँज गया था। उसके घर का आँगन और आँगन के ऊपर का आसमान मिलकर एक गुंबद-सा बन गये थे और हर ध्वनि को प्रतिध्वनित कर रहे थे।

'जिन्दगी कैसे गुज़ारेगी ?'

इस सवाल के बहुत से पख निकलते हुए महसूस हुए। उसे लगा वह उड़ने लगा है और एक-एक पंख छोड़ता जा रहा है।

'उसने ऐसा क्यों सोचा ?'

'क्या ऐसा हो सकता है ?'

'वह ऐसा क्यों सोचता है कि मैं पहले घर वापिस चली जाऊंगी ?'

'वह इतनी बेवकूफ क्यो है कि बिना सोचे-समझे कुछ भी कह देती है ?'

'उसका बोलना ही काल हुआ जा रहा है ?'

'बिटिया की बीमारी की बात उसने क्यों कह दी ?'

'नाता तोड़ते हुए मोह नही व्यापा तो अब क्यों व्याप रहा है ?'

अपने ही सवाल उसे लौट-लौटकर सुनाई भी पड़ रहे थे। अपने सोचने की प्रत्येक प्रतिध्वनि पर वह टूट-टूट जारही थी। आख़िर वह यह सब क्यों सोच रही है? उसे मालूम नहीं कि उसने वह गोल गुंवद अपने अन्दर उतार लिया है। अब जो भी वह सोचेगी गूंज-गूंजकर उसके कानों के पर्दे फाड़ डालेगा।

उसने ढाबेवाले उस आदमी के बारे में सोचना शुरू किया। वह उसके आदमी के साथ बीमारी की तरह घर मे घुस आया है। जैसी वह बातें करता है, वे घूम-फिरकर उसी की तरफ मुंह खोल देती है। शायद वह सोचता है जब अपने आदमी को वह इस हालत में देखेगी तो उसके साथ मुंह काला कर लेगी। उसे कुछ नही मालूम कि पहले घर से वह क्यो आयी ? वह समझता है उसे आदमी बदलने का शौक है। वह कसाई की तरह था। यह बच्चो की तरह है। इसके घर में बैठकर उसने एक घर बनाने की कामना की थी। यह समझता है उसके यहाँ आने से किसी कोठे की शुरूआत हो गयी है।

उसे फिर अपना सोचना शोर की तरह फैलता हुआ लगा। वह आसमान देखने लगी। अँधेरा और ढलते दिन की रोशनी आपस मे घुल गये थे। अँधेरे की कालस गदरा रही थी और वह सफेदी पर चढ़ती जा रही थी। वह उठी। पहली बार उसका मन हुआ वह तुलसी के थाले

मे दिया जला दे। उसके आँगन मे बढते अँधेरे को रोकने मे शायद दिया कुछ मदद कर सके। तुलसी की पत्तियाँ तक अँधेरे के वज़न से आपस मे चिपकती जा रही थी।

उसने दिया जलाया। दिया जलाकर वह फिर कमरे के दरवाज़े पर खड़ी हो गयी। वह अपने को न अन्दर सुरक्षित महसूस कर रही थी और न बाहर आँगन मे। दिये ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार तुलसी के आस-पास एक छोटी-सी झोपड़ी छा दी। वह ही उसे हल्का-सा ढाढस बँधा रही थी।

दरवाज़े की कुडी फिर बजी। उसे ध्यान आया वह दरवाज़ा बन्द करने नही गयी थी। दरवाज़ा खुला पड़ा रहा होगा। उसे देखते ही वह फिर बोलने लगेगा, पता नही क्या आल-पताल बकने लगे। वह दरवाज़े तक गयी तो दरवाज़ा भिड़ा था, कुडी नही लगी थी। वह सवेरे की तरह ही डाक्टर से बतिया रहा था, 'बेचारी एक को छोड के यहाँ आयी, यह भी चलता बना तो कहाँ जायेगी? उमर ही क्या है?' फिर हँसकर बोला, 'राँड तो रह ले, रँडवे भी रहने दें।'

उसने एकाएक पूरा दरवाज़ा खोल दिया। उसकी आदत आदमी के आने-जाने लायक दरवाज़ा खोलने की थी। झटके के साथ बहुत-सी बातें उसके मुँह मे आयी, लेकिन नीमा ने नीचे उतार ली। अन्दर आ गये तो उसने किवाड़ों को इस तरह बंद किया कि दरवाज़ा अपने-आप छोटा होते-होते बन्द हो गया हो।

वह डाक्टर को लेकर अपने-आप ही अन्दर पहुँच गया। बाहर जलते दिये के प्रकाश का आभास उस कमरे में थोडा-थोड़ा था, लेकिन कमरे में जमे अँधेरे की पर्तों के पार नही जा पा रहा था। उसी ने बत्ती जलायी। सिर्फ उसी कमरे में बत्ती थी। नीमा के आने पर नीमा के आदमी ने पिछले घर से दो रुपये महीने पर बिजली का एक लट्टू ले लिया था। बाकी घर मे लालटेन और दिये ही जलते थे।

रोशनी के जलते ही नीमा को लगा उस आदमी के गाल ढल गये हैं और भवें फूल आयी हैं।

डाक्टर ने पूछा, 'उन्होंने सवेरेवाली दवा खायी?'

होटलवाला आदमी ही बोला, 'बता रही थी तीन खून की उल्टियाँ हुई थी ।'

उसके मुँह से खून की उल्टी का नाम सुनकर नीमा डर गयी ।

'इनकी घरवाली को बताने दो ।'

डाक्टर के द्वारा घरवाली कहा जाना उसे अच्छा लगा। उसने डाक्टर की तरफ़ देखा । वह नीमा की ओर ही देख रहा था ।

डाक्टर ने पूछा, 'दवाई दिया ?'

'दो गोली उलट दी ... एक गोली खायी ।'

'फिर ?'

'तब से बेसुध पड़े हैं ।'

'कुछ लिया ?'

'एक कटोरी चाय ... वह भी उलट दी । '

ढाबेवाला आदमी फिर बोला, 'पड़तानी ने भी कुछ नहीं खाया ।'

'आपको कुछ जरूर लेना चाहिए, नहीं तो इनकी देखभाल कौन करेगा ?'

वह चुप रही । खाने के बजाय उसका रोने का मन हो आया । ढाबेवाला आदमी बीच-बीच मे नीमा की तरफ देखने लगता था या कुछ न कुछ बोल देता था । नीमा वहाँ से हट गयी और दरवाज़े के पीछे उसी खोह मे उतर गयी । डाक्टर ने उसे उतरते हुए देखा । उस समय उसके सामने मरीज था ।

जब वह देखकर सीधा खड़ा हुआ तो उसकी दूर तक फैली हुई परछाई देखकर नीमा को महसूस हुआ वह वहाँ पर मौजूद लोगों में वह सबसे बडा आदमी है । उसका आदमी पलंग पर लेटा-लेटा एक बालक हो गया था ।

डाक्टर अपने-आप ही बोला, 'मैं एक सुई दिये देता हूँ। रात आराम से कट जायेगी ।'

नीमा ने आवाज़ के साथ अपने को साधते हुए पूछा, 'कब तक ठीक हो जायेंगे ?'

डाक्टर चुप रहा । बैग से सुई निकालकर साफ करता रहा । स्प्रिट

की गंध नीमा की नाक में बुरी तरह घुस गयी। उसे घबराहट-सी होने लगी। सुई की नोक से वह थोड़ा डर रही थी। शरीर में घुसकर कितना दर्द पहुँचायेगी ? वह चुपचाप देखती रही। डाक्टर ने दवा भर कर, धोती नीचे खिसकाकर सुई उसके कूल्हे में घुसेड़ी, तो नीमा ने दूसरी तरफ मुँह घुमा लिया। उसे केवल अपने आदमी की उँहूँ सुनायी पड़ी। नीमा को काफ़ी देर तक लगता रहा डाक्टर को धोती नहीं खिसकानी चाहिए थी।

बैग बन्द करते हुए डाक्टर बतलाता रहा, 'सुबह खबर भिजवाइएगा। अगर परेशानी हो तो एक गोली दिये जाता हूँ। उसे खिला दीजिए।'

उसको एक गोली दे दी।

नीमा झाँकना बन्द करके बाहर निकल आयी, 'डाक्टर साहब, खाँसी बहुत उठती है।'

'ऐसी ही बीमारी है।'

नीमा ने फिर पूछा, 'सुई और लगेगी ?'

'हाँ, लगानी पड़ेगी। बिना उसके कैसे काम चलेगा !'

ढाबेवाला आदमी तुलसी के पास से गुजरते हुए बोला, 'पंडतानी, इस तरह तो तुम्हारा दिया बुझ जायेगा।'

नीमा को उसका इस तरह बोलना एकाएक बहुत बुरा लग गया। वह कुछ न कुछ कहने को हुई, पर कह नहीं सकी। उसने अन्दर ही अन्दर महसूस किया, दिये से बनी झोपड़ी सिमटकर काफी नीचे आ गयी है।

वह दरवाज़ा बन्द करने के लिए पीछे-पीछे गयी। डाक्टर को दरवाज़े के बाहर जाते हुए देखकर उसे लगा कि वह उन्हें रोक ले। उसके मुँह से एकाएक निकला, 'इन्हें यह क्या हो गया ?'

डाक्टर साहब रुक गये। सोचकर बोले, 'एक नया तरह का निमोनिया मालूम पड़ता है। फेफड़ों पर असर है। ठीक करने की कोशिश करूँगा।'

वह चुप हो गयी। उसके मन में आया वह ढाबेवाले आदमी से रात को रहने के लिए कह दे। लेकिन उसका मन ठुका नहीं। वह

डाक्टर साहब के पीछे ही पीछे बाहर निकल गया। नीमा ने धीरे-धीरे दरवाज़ा भेड़ दिया। दरवाज़ा बन्द हो जाने पर सड़क से आनेवाली रोशनी से कटकर वह उस छोटी-सी दहलीज़ के छोटे-से अँधेरे में घिर गयी। उसे वह अँधेरा अधिक सुरक्षित महसूस हुआ। वह दो-चार मिनट ज्यादा खड़ी रही। लेकिन उसे तुलसी के थांवले में सिकुड़ते दिये का ध्यान आया। कहीं बुझ ना गया हो? वह आँगन मे चली गयी। दिये के ऊपर बनी वह झोंपड़ी पूरी तरह ढहकर उसी के ऊपर आ गयी थी। नीमा दौड़ी गयी और एक बूंद घी टपका दिया। चेतन हो गया और झोपड़ी फिर उठ गयी।

दिये के प्रकाश के मुकाबले अन्दर बिजली की रोशनी ठहरी हुई थी। टस से मस नही हो रही थी। उसके आदमी के मुंह पर लगातार इकट्ठी हो रही थी। उसका चेहरा थोड़ा-थोडा साफ होने लगा था। नीमा ने ढाबेवाले आदमी के द्वारा दिये गये नोट निकाल लिये और गिनने लगी। नोट मैले होते हुए भी नोट लग रहे थे। रुपयों को गिन-कर आलेवाली डिबिया में रख दिये। वह रात-भर नही सो पायी थी। भूखी भी थी और बेसोई भी। घुटनों के जोड़ खुलने-खुलने को थे। वह दीवार के सहारे बैठकर धोती ऊपर उठाकर घुटने मलने लगी। बिजली की रोशनी उसके घुटनों तक आ-आकर फुर्ती से वापस लौट जाती थी। वह कपड़ों के प्रति इतनी बेसुध थी कि उसकी धोती का नीचे का हिस्सा खड़े हुए घुटनो के कारण लटक रहा था। बाहरी आदमी की उपस्थिति उसे बेपर्दगी मे बदल सकती थी।

उसके आदमी ने करवट बदली तो धीरे-से नीमा का नाम लिया।

नीमा ने एकाएक अपने कपड़े ठीक कर लिये और खाट की पट्टी पकड़कर खडी हो गयी। पूछा, 'कैसी तबीयत है?'

उसने आँखें खोली तो नीमा को लगा कि उसकी आँखे दिये की बैठती हुई बत्ती की तरह हो गयी है। लेकिन वे सुबह से काफ़ी फर्क थी। अब वे उतनी ओपरी और अविश्वसनीय नही लग रही थी।

'ठीक है।' फिर धीरे-से बोला, 'मुझे ये क्या हो गया नीमा?'

'डाक्टर साहब कह रहे थे, ठीक हो जाओगे।'

और भी धीरे-से कहा, 'देखो !'

उसने फिर आँखें बन्द कर ली। आँखें बन्द कर लेने पर वह अन्दर को लुढ़क गया। नीमा इन्तज़ार करती रही। वह अन्दर ही बना रहा। जब नहीं निकला तो नीमा ने पूछा, 'कुछ खाओगे ?'

उसे कुछ देर लगी। वह धीरे से बोला, 'थोड़ी-थोड़ी भूख लग रही है।' फिर रुककर पूछा, 'तुमने खाया ?'

'तुम खा लोगे तो मैं भी खाऊँगी। सूजी की खीर बना दूँ ?'

'बना दो।'

थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा, 'तुम क्या खाओगी ?'

'मैं भी कुछ बना लूँगी।'

'दुकान से वो ''आया था ?'

'हाँ, डाक्टर को पहुँचाने गया है।'

'तुम्हारे लिए परांठे सिकवाकर लाया ?'

'वह काफी पहले आ गया था। तब तो चूल्हा चढ़ने का वक्त भी नहीं हुआ था। आते ही डाक्टर को बुलाने भेज दिया।'

'सुबह भी तो डाक्टर आया था ?' उसे खाँसी आने लगी।

नीमा ने रोका, 'ज्यादा मत बोलो।'

वह चुप हो गया। उसके बन्द होठों से लगा उसने चुप रहने के लिए बन्द किये हैं।

नीमा उसके कपड़े ठीक करने लगी। उसकी आँखें खुल नहीं रही थी। बीच-बीच में खोलता, फिर बन्द कर लेता था।

नीमा ने पूछा, 'बत्ती बन्द कर दूँ ?'

बिना बोले उसने गर्दन हिला दी, 'नहीं !'

उसके बोलने से लगा नीमा की बात का उस पर गहरा असर हुआ है। वह बोलना नहीं चाहता।

नीमा रसोई में गयी। वहाँ मार-मुलक का अँधेरा था। लालटेन नहीं जली थी। वह लालटेन लेकर बाहर आँगन मे कमरे की रोशनी से बने एक और दरवाज़े की चौहद्दी मे बैठकर लालटेन सँवारने लगी। चिमनी पर कालख ही कालख जमी थी। रात किसी वक्त लालटेन भभक

गयी थी। जब तक उसमें तेल रहा था वह धुआँ ही छोड़ती रही थी। भभकने पर रोशनी नहीं होती, धुआँ ही होता है। नीमा की स्थिति उस समय ऐसी नहीं थी कि बैठकर लालटेन को सँवारती वल्कि उसे उस समय लालटेन का ध्यान तक नहीं रहा था।

उसने चिमनी साफ की। बत्ती कतरकर सँवारी, तेल डाला! बोतल में से बुक-बुक करके निकलता हुआ तेल उसे चोर की तरह लगा। थोड़ा तेल ज़मीन पर गिर गया। उसने कपड़े से उसे रगड़ना चाहा, लेकिन वह सीलन की तरह फैल चुका था। लालटेन जलने पर उसकी रोशनी मद्धम और पीली-पीली मालूम पड़ी। इतनी मेहनत करने के बाद इतनी मरियल रोशनी से उसका जी नहीं भरा।

रसोई में लालटेन रखकर उसने हाथ माँजे। बार-बार हाथ माँजने पर भी उसे बदबू मालूम पड़ रही थी। उसे लगा उसके हाथों की बू कभी जायेगी नहीं। बू भी बदनामी की तरह साथ-साथ जान को लग गयी है। वह खिसिया गयी। उसे खीर बनानी थी। उसमें भी कहीं यह बू ना समा जाये। उसने हाथों को ज़मीन पर रगड़ना शुरू कर दिया।

खीर चढ़ाकर वह कमरे में लौट आयी। उसका आदमी कुछ बेचैनी अनुभव कर रहा था।

नीमा ने पूछा, 'क्या बात है?'

वह दुखी हो गया, 'मैं कुछ नहीं कर सकता, मेरी क्या जिन्दगी है?'

'उल्टियों की वजह से कमज़ोरी हो गयी।'

'फेफड़ों में दर्द होता है।'

'ठीक हो जाओगे। आराम से लेटे रहो। डाक्टर ने आराम करने को कहा है।'

'ढाबे से मिस्सर आयेगा!'

'पता नहीं। हो सकता है डाक्टर को छोड़कर दुकान पर चला जाये। कह रहा था वह नहीं होता तो गाहक लौट जाते हैं।'

'दोपहर का गल्ला दिया?'

'हाँ, चालीस रुपये।'

'बस, चालीस रुपये ?'

'तुम लेटे रहो। इन सब बातों की फिक्र न करो। ठीक होकर देख लेना।'

'हाँ, ठीक हो जाऊँगा तो देखूँगा।'

नीमा एकाएक बोली, 'अच्छा तुम चुपचाप लेटे रहो। मैं खीर लेकर आती हूँ।'

नीमा जाने लगी तो उसने पूछा, 'सुनो, तुम्हारी बेटी ठीक है? मैंने मिस्सर से रोज देखकर आने को कहा था।'

नीमा की समझ में नही आया क्या जवाब दे। वह यह कहती हुई तेज़ी से चली गयी, 'अभी आती हूँ खीर लेकर, नही तो जल जायेगी।' बाहर पहुँचते-पहुँचते उसकी आवाज फट गयी।

उसने फिर आँखें बन्द कर ली और समर्पण की मुद्रा में निढाल लेट गया।

नीमा को नीद टुकड़ों-टुकड़ो मे आती थी। रात को कई बार उठना पड़ता था। कमरे की उसी खोह मे मद्धम की हुई लालटेन रखी रहती थी जहाँ नीमा डाक्टर और ढाबेवाले आदमी के आने पर अपने-आपको छिपा लेती थी। मद्धम होने के कारण लालटेन की टटोलती-सी रोशनी सारे कमरे में लगातार बनी रहती थी। जब भी नीमा की आँख खुलती, उसका आदमी निढाल लेटा दिखायी पड़ता या लालटेन की ऊँघती हुई-सी रोशनी बैठी मिलती। वह उठकर उसे देखती जरूर थी। कई बार जब उसे खाँसी उठती तो नीमा उसके पलंग पर पहुँचकर उसका सीना सहलाने लगती थी। कई बार खाँसी लगातार आती रहती तो नीमा को लगता उसका साँस खिच रहा है। तब वह रुआँसी हो जाती थी। बड़ी मुश्किल से हाथ-पाँव फूलने से रोकती। तब उसे आदमियों की कमी अखरने लगती थी। उसका मन ऐसी-वैसी बातें सोचने लगता। अगर उसे कुछ हो गया तो वह अकेली उसके बराबर बैठी रात-भर रोने के सिवा कुछ नही कर सकेगी। सुबह होने पर कुछ प्रबन्ध हो पायेगा। उसके पोर-पोर मे एक भय-सा व्यापने लगता।

जब वह कुछ चेतन नज़र आता तो उसका मन आशा से भर जाता था कि वह ज़रूर ठीक हो जायेगा । वह काफ़ी दौड़-दौड़कर काम करती थी । दिन में जितनी वार उसका मन आशावान होता था उतनी ही वार वह अपने को दूसरे छोर पर खड़ा अनुभव करती थी । तव उसके हाथ-पैर ठंडे पड जाते थे । जब भी उसे मौका मिलता वह डाक्टर को बुलाकर दिखाने की कोशिश ज़रूर करती थी । खास तौर से जब ढावेवाला आदमी गल्ले के पैसे लाकर उसे दे देता था । कभी डाक्टर का चेहरा हँसता रहता और कई वार वह चिन्तित नज़र आने लगता । तव वह भी सुस्त हो जाती और उन सब अशुभ खयालातों से घिर जाती जिन्हें वह सप्रयास दूर रखने की कोशिश करती रहती थी ।

पिछले कुछ दिनो से उसकी यह हालत कई वार हुई थी । उस दिन शाम को नीमा के आदमी का सांस बुरी तरह खिच रहा था । डाक्टर को बुलाया गया तो डाक्टर भी चिन्तित हो उठा । कई दिनों वाद उसकी ऐसी नाजुक हालत हुई थी । उसी हालत में उसने डाक्टर से कहा, 'डाक्टर साहव, यह औरत मेरे ही सहारे है !'

ढावेवाले आदमी पर विना वोले नही रहा गया, 'अरे नही पंडत, पंडतानी का दूसरा घर भी है, इससे ज्यादा तो हम है तेरे सहारे ।'

नीमा ने उसकी तरफ़ देखा । नीमा की नजर धुँधला गयी । वह वाहर चली गयी । डाक्टर को फिर सुई देनी पडी । सुई लगने के वाद वह धीरे-धीरे सुई के असर मे आता गया । उसका सांस ठिकाने आने लगा । जब तक उसकी तवीयत सहूलियत पर नही आ गयी, डाक्टर वहीं बैठा रहा ।

डाक्टर जाने लगा तो नीमा ने सामने आकर पूछा, 'डाक्टर साहव, इनको क्या हो गया ?'

डाक्टर एक मिनट चुप रहा । फिर बोला, 'कोशिश तो वहुत कर रहा हूँ । किसी तरह पंडितजी ठीक हो जायें । कभी दवा काम कर जाती है, कभी नही करती । भगवान पर भरोसा रखिये ।'

नीमा को लगा डाक्टर उसका वाँध तोड़ने पर आमादा है । टूटकर वाहर तो नही निकला लेकिन अन्दर घू-घू करके वाढ के पानी की तरह

उफन आया। उसने गला साधे हुए कहा, 'क्या अब ये ठीक नहीं होंगे ?'

'भगवान का भरोसा रखिये। निमोनिया का असर फेफड़ों पर भी तेजी से बढ रहा है। सुई लगाई है, इससे जरूर फ़ायदा होगा।'

वह बोली, 'डाक्टर साहब, इन्हें ठीक कर दीजिए! मैं सब-कुछ बेच-कर खर्चा भर दूँगी।'

ढाबेवाला आदमी फौरन बोला, 'यह ना कर पाओगी पंडतानी, बेचने का हक ब्याहता को या बाल-बच्चों को ही होता है।'

डाक्टर ने नीमा के चेहरे की तरफ़ देखा। जितनी जल्दी तम-तमाया उतनी ही जल्दी पिघल गया। नीमा कुछ देर तक उस चोट से अपने को उबारने में लगी रही। डाक्टर चले गये। पीछे-पीछे वह ढाबे-वाला भी लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ निकल गया।

उसका आदमी सुई के असर मे काफी था। उसका साँस अभी भी तेज था पर उसे पता नही चल रहा था। बीच-बीच मे उसकी गर्दन काँपती, फिर ठीक हो जाती थी। नीमा उसको थोड़ी देर तक गौर से देखती रही। देखते-देखते उसे लगा उसका चेहरा बर्फ के टुकड़े की तरह धीरे-धीरे पिघल रहा है।

बराबर मे ही पलग की पट्टी पकड़कर उसने ज़मीन पर फसकड़ा मार लिया। पट्टी पकड़े-पकड़े वह धीरे-धीरे सिसकने लगी। उसकी पलकें भर गई, नाक की टुस्सी लाल हो गई और होंठ पपड़ा गये। दबी-दबी सिसकियाँ भरते-भरते उसका गला सूखने लगा। खामोशी से घिरा उसका घर अजीब-अजीब शक्लें रख लेता था। कभी घोडा, कभी हाथी, कभी सुअर और कभी भैसा। कभी बिछी हुई चादर की तरह वह अपने ही आप सिमटने लगता था और गठरी की भाँति उसे बाँध लेता था। कभी छत नीचे को आने लगती थी। अनजाने ही एकाएक खड़े होकर उसने अपने आदमी को बचाने के लिए छत रोकने की कोशिश की। फिर उसे ध्यान आया, वह लगातार अपने आदमी के लिए मनहूस बातें सोच रही है। वह मग्न हो जाती। झिंगरी की आवाज़ एक लम्बी रस्सी की तरह उसके चारों तरफ लिपटने लगती।

वह बाहर निकल आयी। तुलसी का थाला अँधेरा था। उसे दिया

जलाने का ध्यान आया। आँगन उसे अँधेरा लगा। बल्कि अँधेरा दुबके हुए चोरों की तरह महसूस हो रहा था। उसे लगा उसके बीच से अकेले निकलना मुश्किल होगा। लेकिन वह बीच से निकलती चली गई। उसे लगता रहा वे सब फुसफुसा रहे हैं। रसोई में जाकर टटोल-टटोल कर उसने रुई तलाश की। एक खड़ी बत्ती बटी। उसने दिये मे घी नही भरा। बत्ती को ही डिब्बे में लगे घी से भिगो लिया। ना तो ज्यादा घी था ही और ना ही वह इस समय ज्यादा घी खर्च हो कर सकती थी। हालांकि उसे यह सब सोचना अच्छा नही लगा। तुलसी मैया के लिए इस तरह की बातें सोचना उसे कतई अच्छा नही लगता। सब उनकी ही कृपा का फल है। वह निर्णय नही कर सकी। तुलसी के थाँवले मे उसने उस बत्ती को टिकाकर जला दिया। चोरो वाला वह अँधेरा और अँधेरे का वह बहुरूप सब छूमन्तर हो गये। सारा आँगन उठा-उठा-सा लगने लगा। उसे लगा वह उस झोपड़ी के नीचे आ गई है जिसे दिये की रोशनी ने उठा दिया था।

वह लौटकर फिर अपने आदमी के पलंग की पट्टी पकडकर जमीन में बैठ गई। सुई-धागा लेकर अपना फटा आँचल सीने लगी। उसकी सुई जब ऊपर जाती थी तो लालटेन की रोशनी उसे पल-भर के लिए वही थाम लेती थी। धोती सी लेने पर उसे महसूस हुआ वह गाँठ-गठूली हो गई है। जमीन पर बिछाकर उसने उसका गँठीलापन हाथ से निकालना चाहा। लेकिन वह बुरी तरह उभर आया था।

धोती सी लेने के बाद वह फिर बहुत ज्यादा खाली हो गई। बार-बार उठकर वह अपने आदमी को देख लेती थी। कुछ देर तक वह उसका सीना देखती रही। कभी उसे एकाएक लगता उसके सीने का उठना-बैठना धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। वह अपना हाथ उसकी नाक के सामने करके देखती। साँस चल रहा होता। वह फिर बैठ जाती, और ज्यादा खाली हो जाती।

खाने को उसका मन बिल्कुल नही था। हालांकि दोपहर की बची हुई रोटियाँ रखी थीं। दो-तीन बार उसने सोचा खाये या ना खाये?

अन्त मे उसने यही निश्चय किया कि वह खा नहीं सकेगी। उसने खाने का इरादा पूरी तरह छोड़ दिया तो उसे अपने पेट में भूख धीरे-धीरे सुरंग की तरह सुलगकर रेंगती-सी लगी। लेकिन उसने उसको इस तरह अनदेखा करना चाहा। अब तक खाने का जयाल भी नही आया था। उसने उस खयाल का सोने के इरादे से मुकाबला करना चाहा। ज़मीन पर अपने सोने के कपड़े बिछाये और लेट गई। लेटे-लेटे वह अपने आदमी के बारे मे सोचती रही। उसे रात को उठ-उठाकर देखते रहना चाहिए। वह डाक्टर की सब बातों को नजरअन्दाज़ करना चाहती थी। लेकिन भूख की तरह ही डाक्टर की बात भी उसके दिमाग में एक दूसरी सुरंग की तरह सुलग रही थी।

लेटे-लेटे उसे लालटेन की रोशनी कुछ ज्यादा महसूस हुई। उसने उठकर उसे और कम कर दिया। आकर लेटी तो उसे फिर लगा कि लालटेन की रोशनी इतनी कम नही होनी चाहिए। इतने अँधेरे की ज़रूरत नही है। हो सकता है अँधेरे में उसे गहरी नीद आ जाये और उसके सोते-सोते ही कोई ऐसी ऊँच-नीच हो जाये जिसके लिए उसे जिन्दगी-भर पछताना पड़े। वह फिर उठी और लालटेन को दरवाज़े के पीछे रखकर बत्ती ऊँची कर दी। आधे से ज्यादा हिस्से मे रोशनी का एक तिरछा चतुर्भुज बिछ गया। रोशनी के बढ़ जाने से हालाँकि उन लोगों के मुकाबले दीवारें ज्यादा उभर आई थी और नंगेपन का-सा आभास भर गया था, लेकिन उसने ज्यादा परवाह नही की।

उसे बिटिया के बारे मे किया गया सवाल याद आ गया। उसने बिटिया के बारे में क्यों पूछा? इस सवाल ने उसे फिर उठाकर बैठा दिया। फिर सवाल के बाद सवाल चालू हो गये। जब से वह बीमार पड़ा है तब से वह पहले आदमी के पास लौट जाने की बात क्यो करने लगता है? उस रोज़ की उसकी बकवास अपनी पूरी कालख के साथ उसके ऊपर तिरछी होकर लगातार टपक रही है। शायद औरों की तरह वह भी यही समझता था कि औरत एक बार ही चूल्हे चढती है। फिर लोग सिक्के की तरह उछालकर देखते हैं—कितनी खरी, कितनी खोटी और वापस कर देते हैं।

उसके आदमी ने धीरे से पुकारा, 'नीमा !'

वह उठ गयी ।

'ज़रा बत्ती जला दो ।'

नीमा ने बत्ती जला दी । उसका चेहरा सोकर उठा हुआ-सा लग रहा था । इस बीमारी में पहली बार उसका चेहरा इतना साफ दिखाई पड़ा था । नीमा ने झुककर पूछा, 'तुम्हारी तबीयत अब ठीक है ?'

उसने धीरे-से स्वीकारात्मक गर्दन हिला दी । फिर पूछा, 'खाना खाया ?'

उसके जवाब देने से पहले ही उसने अपने ही आप कहा, 'खा लो ।'

नीमा चुपचाप रसोई में चली गयी । वह आँखें बन्द करके चुपचाप लेटा रहा । उसकी बन्द पलकों पर बिजली की रोशनी नदी की ऊपरी सतह की तरह बहती रही । नीमा अपनी रोटी वहीं ले आयी । जमीन पर बैठकर खाने लगी । धीरे-से बोला, 'तुम उस दिन खा लेती···।'

खाते-खाते नीमा के होठ काँप गये ।

वह फिर बोला, 'तुम रोटी खा लिया करो । इसको नहीं ठुकराना चाहिए । रोटी अपनी मर्ज़ी से नहीं मिल पाती । जब मिल जाये तब अच्छा !'

नीमा का मुंह रुक गया ।

उसने अपने-आप ही करवट लेकर नीमा की ओर मुंह कर लिया । नीमा ने खँखारकर धीरे-से कहा, 'तुमने करवट ले ली ' खाँसी उठने लगेगी ।'

वह बहुत दिनों बाद मुस्कुराया, 'नीमा, एक टुकड़ा मुझे दे दो । एक ज़माने से रोटी नहीं चखी ।'

नीमा अपने मुंह में टुकड़ा रखने जा रही थी । एकाएक उसकी समझ में कुछ नहीं आया, वही टुकड़ा उसकी तरफ बढ़ा दिया । उसने मुंह खोलकर टुकड़ा ले लिया । नीमा की उँगलियों से बन्द होते-होते होठ छू गये । मुंह चलाने में उसका जबड़ा दुख रहा था ।

'खाया नहीं जाता ।' उसने धीरे-से कहा ।

नीमा खाकर थाली रखने रसोई में चली गयी। हाथ धोते-धोते बिटिया का ध्यान आया। मियादी बुखार मे उसकी बिटिया भी रोटी को तरस गयी थी। एक दिन जब वह रोटी खा रही थी तो खिसक-खिसककर उसके पास पहुँचकर उसने बहुत धीरे-से कहा था, 'माँ, एक टुकला।' उसने चुपचाप खिला दिया था। उससे भी मना कर दिया था किसी से कहे नही। बिटिया भी इतनी पक्की निकली कि किसी के सामने जबान तक नही हिलायी! नही तो उसका बाप जान से मार डालता।

कुल्ला करने के बाद वह सीधी हुई तो अपना इस तरह बेतरतीब सोचते जाना उसे अच्छा नही लगा। उसे फिर डर हुआ, कही वह फिर बिटिया के बारे में बातें करना शुरू ना कर दे! कई दिन बाद उसकी तबीयत ठीक हुई है। आज बहुत बोल रहा है।

वह कमरे मे गयी तो वह बोला, 'कई दिन से नही बैठा। आज मैं बैठ सकता हूँ।'

नीमा ने पीछे सहारा देकर उसे बैठाना चाहा तो उसने मना कर दिया। वह अपने-आप ही बैठा। नीमा ने कपड़ों की एक गठरी पीछे सहारे के लिए लगा दी। खुद भी उसके पीछे सहारे के लिए बैठ गयी। नीमा को लग रहा था उसके फेफड़ो मे साँस बहुत धीरे-धीरे भरती है। उसके दिमाग में फिर वही मनहूस बात आयी—कभी उसका साँस निकल जाये और फिर वापिस ना आये!

उसने पूछा, 'नीमा, मैं ठीक हो जाऊँगा? मेरे बाद तुम क्या करोगी?'

नीमा झुरझुरा-सी गयी। उसका मन हुआ उसके मुँह पर हाथ रखकर उसे आगे बोलने से रोक दे।

नीमा से उसने फिर कहा, 'तुम बोलती क्यों नही?'

नीमा ने सिर्फ खँखारा। वह आँखें बन्द करके सुस्ताता हुआ-सा लगा। नीमा ने अपने आँचल से चुपच [illegible] ली। [illegible] चुप थे। नीमा उससे कहना चाहती [illegible], लेकिन नही सकी। वह डर रही थी कही धब [illegible] ना आने।

वह दरवाज़े के पीछे धीरे-धीरे जलती लालटेन की तरफ देख रही थी। उसने उठकर उसे बुझाना चाहा। पर वह उठ नहीं सकी। उसे लगा कहीं उसके उठते ही वह गिर ना जाये। वह उसका सहारा बनी बैठी थी।

वह आँखें बन्द किये-किये ही बोला, 'मैंने तुमसे उस दिन कहा था'''तुम्हें याद है ?'

नीमा ने इस बार कहा, 'थक जाओगे, लेट जाओ।'

'अच्छा।'

नीमा ने उसे धीमे-से लिटाना चाहा। लेकिन वह अपने-आप ही लेटा। लेटकर थोड़ी देर बाद बोला, 'मुझे आज उतनी थकान नहीं लग रही। लगता है मैं ठीक हो जाऊँगा।' फिर धीरे-से कहा, 'पता नहीं'''होऊँगा भी या नहीं !'

नीमा ने अपने स्वर को थोड़ा संयत करके कहा, 'तुम यह सब ना सोचा करो' 'इससे'''' बीच ही में वह चुप हो गयी। वह कुछ नहीं बोला।

नीमा ने फिर पूछा, 'बत्ती बन्द कर दूं ?'

'जलने दो ''' अभी जलने दो। बत्ती जलते रहने से लगता है सब कुछ मौजूद है। बन्द कर देने पर मैं अकेला रह जाता हूँ।'

नीमा उसे एकटक देख रही थी। वह आँखें बन्द किये चुपचाप लेटा था। उसका चेहरा एकदम ठहरे तालाब की सतह था। छोटी-सी ककर गिरते ही लहरें ही लहरें हो जायेंगी। नीमा उलझी हुई थी। बीच-बीच में आँखें बन्द करके अपने को निकालने की कोशिश करती थी।

वह अपने-आप ही बोला, 'कई बार लगता है दिमाग उड़ा जा रहा है। अकेला होता तो क्या करता ! तुम हो तो लगता है पता नहीं कितने लोग हैं ! अपने-आप अकेला नहीं रह पाता '''।'

'तुम सोने की कोशिश करो। थकान बढ जायेगी।'

नीमा के कुछ देर बाद वह बोला, 'तुम एक काम करोगी ?'

'हाँ।'

रुककर उसने कहा, 'तुम मेरे पास आ जाओ। मुझे कसकर पकड़

लो। हो सकता है.....'

नीमा एक मिनट चुप रही। उसकी समझ में नहीं आया क्या करे।

उसी ने फिर कहा, 'मन नही करता या डर लगता है?'

नीमा बिलबिला गयी। वह अपने-आप ही बोला, 'तो रहने दो।'

नीमा के गले मे एकाएक दुखन बढ गयी।

'बुढापे में कोई देखने-भालनेवाला होता तो अच्छा था।'

'बत्ती बन्द कर दूं?'

'नही, बन्द होते ही मैं फिर अँधेरे से घिर जाऊँगा।'

नीमा ने बत्ती बन्द कर दी। लालटेन की रोशनी जो नहीं थी, बत्ती बन्द होते ही लौट आयी। बत्ती बन्द होने पर उसने नीमा की तरफ देखा, पर बोला नही।

नीमा घूमकर पलग के दूसरी तरफ गयी। एक बार झाँककर देखा। तुलसी के थाँवले मे जलायी बत्ती जल चुकी थी। पहलेवाला अँधेरा लौट आया था। सामनेवाले मकान की अटारी पर सड़क की बत्ती की रोशनी अधचिपकी पन्नी की तरह फड़फडा रही थी। वह धीरे-से पलग पर बैठ गयी। क्षण-भर बैठी रही। वह आँखें बन्द किये लेटा रहा। नीमा ने धीरे-से पूछा, 'हाथ-पैर दबा दूं?'

उसने गर्दन ही हिलायी, 'नही!'

नीमा ने धीमे-धीमे अपने पैर उसके ओढन के नीचे पसार दिये, फिर लेट गयी।

आँखें बन्द किये-किये ही उसने कहा, 'मुझे पकड़ लो।'

नीमा ने उसके शरीर के चारो तरफ हाथ डालकर बाँहो में ले लिया। काफी देर तक वह उसे उसी तरह बाँहों मे लिये लेटी रही। अपने आदमी की तरह उसकी भी आँखें बन्द थी।

नीमा के आदमी ने बहुत धीरे-धीरे करवट ली। करवट ले लेने पर नीमा ने उसके साँस की गति का अन्दाज लगाना चाहा। खाँसी तो नहीं आने वाली? वह इस सीमा तक ही आश्वस्त हो सकी कि अभी कोई खास बात होनेवाली नहीं है।

नीमा उसके शरीर को पहले से ज्यादा महसूस कर रही थी। बार-

बार उसे डर लगता था, कहीं खाँसी न आ जाये। उसके शरीर से अब नीमा को उतना बालकपन नहीं लग रहा था जितना रोटी का टुकड़ा देते समय लगा था। लेकिन वह थक-थक जा रहा था। नीमा को उसकी थकान का अहसास बहुत गहरे तक था। लेकिन वह कुछ बोल नहीं रही थी। सिर्फ़ महसूस कर रही थी।

लालटेन की रोशनी में उसने एक-आध बार देखने की कोशिश की। लेकिन सिवाय उसकी बन्द आँखों और एकाग्रता के कुछ नहीं देख सकी। एक बार उसे जरूर लगा, लालटेन की रोशनी तक शायद हो गयी है। फिर वह धीरे-धीरे फैली।

पसर में अचानक नीमा की आँखें खुल गयी। उसका साँस बुरी तरह उखड़ा हुआ था। खाँसी लगातार आ रही थी। चेहरे पर भँवर ही भँवर उभर आयी थीं। तालाब बुरी तरह झकझोर दिया गया था। उसने झटके से उठना चाहा, तो उसे लगा उसकी पीठ अलग हो गयी। उसका साँस इतने वेग से चल रहा था कि बिना उठे वह कुछ नहीं कर सकती थी।

उसने पूछा, 'क्या हुआ ?'

वह सिर्फ गर्दन हिला रहा था। नीमा ने उसकी पीठ सहलानी चाही। वह बड़ी मुश्किल से बोला, 'नीमा, अब प्राण खिंच रहे हैं''''' घबराना नहीं।'

उसके साथ-साथ पलंग भी हिल रहा था। वह पानी गर्म करने के लिए रसोई की तरफ दौड़ी। उसे उल्टी आयी। उसने खुद ही तकिये के नीचे से कपड़ा निकालकर उस पर ले ली। वह शायद पहले भी उस पर एक उल्टी ले चुका था। वह कपड़ा भीगा हुआ था। कपड़े को फिर तकिये के नीचे रख दिया।

नीमा आयी तो वह तीसरी उल्टी कर चुका था। नीमा ने गर्म पानी पिलाना चाहा तो वह बोला, 'अब कुछ नहीं बचा नीमा''''खेल खत्म हो गया''''घबराना नहीं !'

बड़ी मुश्किल से एक घूंट भर पाया। उसे फिर उल्टी हो गयी।

वह सँभल नही सका। सब उसके कपड़ों पर बिखर गयी। नीमा ने बत्ती जलानी चाही। उसने हाथ के इशारे से मना कर दिया। लड़खड़ाती जबान में बोला, 'बत्ती से मुझे डर लगता है.....बस तुम मेरे पास रहो।' फिर बड़े संघर्ष के बाद बोला, 'बत्ती से सब जग जायेंगे....अब'' अब .....'

'मै डाक्टर को बुला लाती हूँ.....'

'मुझे अकेला मत छोड़ो.....' वह उसकी गोद का बालक बन गया था।

वह पलंग की पट्टी पर पाँव रखकर उसे सँभालने की कोशिश करने लगी। वह रो की तरह बहा जा रहा था।

बड़ी मुश्किल से निकल पाया, 'मुझे नीचे उतार लो... खाट पर मत रहने दो।'

नीमा का होंठ दाँतों के बीच आ गया।

सवेरे ढाबेवाला आदमी आया तो उसे दरवाज़ा खुला मिला। नीमा जमीन पर उसके बराबर में बैठी थी। उसने कमरे के बाहर से पुकारा, 'पंडतानी!'

नीमा की आँखों से आँसू चू गया। जवाब नही दे पायी। उसने झाँककर देखा तो उसे लगा उसकी गर्दन घूम नही पा रही है। हवा ने फंदा डाल दिया है। वह जूते निकालकर अन्दर गया तो वह सिसकियाँ भर रही थी।

ढाबेवाला आदमी कुछ ऐसे रोया कि नीमा का सांस रुक गया। वह उसके पैर पकडकर रोता-रोता कह रहा था, 'पंडतजी, मुझे छमा कर दो! मुझे क्या मालूम था तुम इतनी जल्दीचले जाओगे। मैंने तो सेवा ही नही की।'

बिस्तर आड़ा होकर आधा पलंग से नीचे लटका था।

नीमा धीरे-से दीवार पकड़कर उठी। आले में रखी डिबिया मे से रुपये निकालकर ढाबेवाले आदमी की तरफ बढा दिये। फिर वहीं बैठ गयी। रुपये लेकर उसने एक बार उलटे-पलटे। फिर बोला, 'पंडतानी,

होटल बंद करा आऊँ ।'

नीमा चुप रही।

वह बाहर गया। जूते पहनता और साफे से नाक पोछता बाहर चल दिया। उसके जाने की आवाज आती रही। बाहर की तरफ जाती हुई उस आवाज ने नीमा को और अधिक अकेला कर दिया। एकबारगी उसका मन हुआ उसे रोक ले। लेकिन वह खामोश होकर बैठ गयी। अपने घुटने खड़े करके सीने से सटा लिये और धीरे-धीरे सिसकने लगी।

२

जब रज्जन हुआ तब वह नितान्त अकेली उसी घर में रहती थी। क़र्ज बूंद-बूंद बढा था और बाढ का पानी हो गया था। मकान की ओट थी। उसे ही बेचा जा सकता था। पर वह मकान को रोके रखना चाहती थी। ढाबा उसी आदमी के पास था। पहले-पहले तो रोज आता रहा था, बाद मे कई-कई बार कहलाने पर आता था। आखिरी बार जब उसने उसे बुलाया था तो वह आकर कह गया था, 'होटल पर पडत के भतीजे ने कब्जा कर लिया। अब वह उसे यहाँ आने को मना करता है। हमे भी रोटी-रोजी करनी है, हम किस बूते पर उससे झगड़ें। तुम तो पंडत का गरभा लिए बैठी हो। हमारी भी तो इज्जत-आबरू है।'

उसके चले जाने पर नीमा ने पेट पर एक जोर का घूंसा मारा। दूसरा घूंसा मारते हुए उसे लगा, किसी ने हाथ पकड़ लिया। उसे लगा, उसका आदमी ही उससे कह रहा है—नही नीमा, पेट मे आये गरभ और सामने आयी थाली को नही ठुकराना चाहिए। वे दोनो अपने चाहे नही मिलते।

हालाँकि वहाँ कोई था नही। बस सिर्फ उसका हाथ रुक गया। फिर वह काफी देर तक रोती रही। उसका मन घुटता रहा। वह जोर-जोर से चिल्लाकर अपने मन की बात कहना चाहती रही। उसे लगता भी रहा, वह अन्दर ही अन्दर चिल्ला भी रही है। लेकिन बेआवाज थी।

वह सामने पड़ने पर किसी से कुछ नही कहती थी। उसके इस अनबोले-पन ने उसे और अकेला बना दिया था। सिर्फ सोचा करती थी—बच्चे का बड़ा शौक चढा था ना! अच्छी-खासी छूट गयी थी। अकेली पंछी की तरह विचरती। अब खूंटे की तरह गड गयी है। पेट और रोटी पीछे-पीछे लग गये है। कहाँ-कहाँ मारी फिरेगी। जिन्दगी-भर सुनेगी और सहेगी।

हफ्ता-दस दिन मे बुढिया दाई देखने आती थी। इसी दाई ने पहली बिटिया का जापा भी किया था। कभी-कभी वह उसी से कहती थी, 'चाची, अगर मुझे कुछ हो जाये तो इसे पाल लेना।'

वह हँस देती थी, 'अरी बिटिया, तुम्हारी उमर ही क्या है। हमने तो ग्यारह जने और तीन पेट गिरे। किसी ने मूठ लगवा दी थी। तुम्हारा तो दूसरा ही है।'

'नही चाची, वही रहती होती तो मुझे एक ही भुतेरी थी। पर उसने तो मुझे जीती को ही मार डाला था। एक दिन मे तीन-तीन बार ··· आदमी थोड़े ही था। मना करती थी तो मारता था। इतना मारता ··· इतना मारता ··· क्या करती! मरी हुई-सी पड जाती थी ···।'

'ठीक है बिटिया, तुम लोगों में चलन नही है ना, एक जगह से दूसरी जगह बैठने का! हम लोगों मे तो दिन-रात औरतें उठती-बैठती रहती है। जेठ-देवर तक में उठ-बैठ लेती है। चाम की ही तो माया है। चाम उतार दो, फिर देखो कौन बिठाता है।' हँसकर बोली, 'हमारा चाम ही तो बिगड़ गया, इसे ही बुढापा कह लो ····।'

नीमा चुप बैठी रही। फिर बोली, 'चाची, कभी अपनी जनायी बेटी को भी देख आया करो। कही वो उसे भी ना कूटता हो। उसका हाथ बहुत छुटा हुआ है। बात पीछे करता है, पहले हाथ छोड़ता है। मरखना कही का।'

'एक दिन मिली थी। बड़ी हो गयी। तेरे जैसे नाक-नक्स निकले हैं। आँखें बाप पर गयी है। उठान भी अच्छी है। भगवान ने चाहा तो जवानी अच्छी होगी। मुंह से माँगकर ले जायेंगे। उसका काल तो

उसकी सकत काट देगी।'

दाई की बातों से नीमा की आँखों में लपक-सी आयी। फिर बुझ गयी। वह फिर बोली, 'दूसरे घर बैठी भी, गरम भी पेरा '' भगवान करे बेटा हो जाये। खुसनामी-बदनामी तो होती ही रहे है। उसका क्या सोचना। मुझे लगे भी, बेटा ही होगा। कोख बिल्कुल खाली पड़ी है। पेट बिल्कुल आगे धरा है।'

'चाची, मुझे तो एक फिकर है, तुम जनवाकर चली जाओगी। फिर कौन करेगा। बछिया और बछडा तो है नहीं, जो जनमते ही चलने लगेगा। आदमी के बच्चे को तो चलने-चलाने मे, खाने-पीने मे सालों लगते हैं।'

'यही तो रामजी की माया है। अगर आदमी का बच्चा भी पैदा होते ही अपने पैरों खड़ा हो जाता तो सारे जग का रहना मुश्किल कर देता। भगवान भी ऐसा बटवारा करे है कि कोई उँगली नही उठा सकता। किसी को दो पैर दिये तो किसी को चार पैर।' कहकर हँस दी। फिर बोली, 'क्या फिकर करे बिटिया, मैं ही पड़ी रहूँगी। वही कौन मेरे उपले पथेंगे।'

'रोटी-टुकड़े का फिकर है चाची। उनका ढाबा था, उसे उनके भतीजे और नौकरो-चाकरो ने हथिया लिया। इस घर पर भी आँख लगाये है। पर घर पर तो उनके इस अंग का हक है।'

नीमा की बात पर लापरवाही से बोली, 'अरी, अपनी रोटी तो मैं ही थेप लिया करूँगी। सवाल तो तेरा है ना ' मेरे हाथ का खाये से तेरी जात चली जायेगी ना।' फिर अपने आप ही हँसी, 'हमारी जात तो तुम लोगो के यहाँ खाये से जाती नही, तुम्हारी हमारे हाथ का खाये से चली जाती है। तो बता, मजबूत किसकी जात हुई—तेरी या मेरी ?'

नीमा हल्का-सा मुस्कुरायी। उसका मुस्कुराना कुछ ऐसा लगा कि मुस्कुराहट रंगकर चेहरे पर चिपका दी गई हो। नीमा ने कहा, 'चाची, शास्त्रों मे लिखा है आपतकाल मे भले-बुरे को दोस नही लगता। जब से यहाँ आई हूँ भाई-भतीजो ने तो तिलाजलि दे दी। उनके मरने पर भी नही आये। उनकी तरफ के···बस वे उन्ही के भतीजे हैं, वे माल-

टाल के चक्कर में है। बस चाची, अब तेरा ही सहारा है, जो मुसीबत में काम आ जाय वही सौ सगों का एक सगा।'

'तो फिर तू फिकर मत कर बिटिया। जरूरत पड़ेगी तो अस्पताल वाली मिस साहब को बुला लाऊँगी। उनसे बड़ी जान-पहचान है। एक बार एक जापे में मेरा उनका आमना-सामना हो गया था। उन पर बच्चा खिंच नहीं रहा था। रस्ता भी छोटा था और जच्चा भी ज़ोर नहीं लगा रही थी। मिस साहब पसीने से तर-बतर हो गई। बार-बार मेरी तरफ देखें। हमारे ऊपर तो उन्हें बुलाया ही गया था। पहले तो सोचा नहीं। जब देखा बच्चा भी तंग और जच्चा भी तंग तो मैंने बाहर जाकर कहा, किसी बन्दूक वाले को बुलाकर बन्दूक छुड़वा दो। जैसे ही बन्दूक छोड़ी गई वैसे ही बच्चा बाहर आ गया। मिस साहब बाहर निकलकर बोली—माई, आज तुमने माँ और बच्चे दोनों को बचा लिया। नहीं तो आज बच्चा गया था या माँ गई थी। जच्चा मदद ही नहीं दे रही थी। पहला बच्चा था, मेरा मुंह काला हो जाता। तुम्हारा तजुर्बा काम कर गया। तभी से मानती है।'

नीमा दाई की बात चुपचाप सुनती रही। फिर बोली, 'कब तक निबट लूंगी ?'

'ज्यादा-ज्यादा कल। नीचे आ गया है। बेटा हुआ तो एक नई-नकोर धोती और जेवर लूंगी।'

नीमा चुप हो गई। एक-आध मिनट सोचती रही, फिर बोली, 'चाची अगर तेरी अपनी बेटी का जापा होता तो ?'

'तो कोई बात नहीं। जब होगा तब देना। पर लूंगी इतना ही। मेरे हाथ का बच्चा दुगनी-तिगनी उमर लेकर जीता है।' कहकर वह ज़ोर से हँस दी।

नीमा दबे स्वर में बोली, 'जिये चाहे जितने दिन, पर भाग वाला नहीं। पहले आ गया होता तो ये दिन ना देखने पड़ते। बाप रखकर पालता। राँड का साँड बना घूमेगा। कौन पास लगायेगा।'

'अरी अभी से क्या देख लिया। छठी को बेमाता भाग लिखने आती हैं। अभी से तू इसका भाग क्यों आँक रही है! बेटा तो राँड का लड्डू

होवे, जिधर से मुंह मारो उधर से मीठा।'

नीमा चुप हो गई।

'अच्छा तो मैं चलूं, कल सुबह ही सुबह आ जाऊँगी। कल मे रह जाऊँगी।'

नीमा तुरन्त बोली, 'कोई जरूरी काम ना हो तो आज ही रह जाओ चाची। रात-बेरात जरूरत पड़ गई तो किससे बुलवाऊँगी? ऐसा भी कोई नहीं जो पानी का गिलास दे दे। आज और कल मे भेद ही कितना है।'

दाई चुप रही, फिर बोली, 'अच्छा घर कह आऊँ।'

नीमा उठी। पहली बार मे उस पर उठा नही गया। धीरे से बोली, 'बिटिया के सात-आठ साल बाद हो रहा है। इस बार ऐसा जकड़ लिया कि हिला नही जाता।'

'बेटा तो वैसे ही दुख देता है। फिर उमर भी कम नही रही। औरत बच्चा जनती रहे पता नही चलता। चार-छ. साल बाद हो, तो बस ऐसा लगने लगे जैसे पेट मे पत्थर भरे हों।'

वह उठकर आले के पास गई। डिबिया खोलकर दस रुपये का नोट निकाला और बोली, 'चाची, ये लो दस रुपये। जिस चीज की जरूरत हो तुम ही लेती आना। एक नोट और है, बाद मे काम आ जायेगा। आगे जैसा भगवान चाहेगा।'

'अरी सब अपने भाग का लेकर आते है। तू फिकर ना कर, तेरा जापा तो पार लगा ही दूंगी। जब तेरा बिटवा ट्वें···ट्वें करेगा तो उसकी ट्वें···ट्वें भगवान के कान मे भी पड़ेगी। हमारी सुने, ना सुने, बच्चों की सुने बिना कहाँ जावेगा।' बुढ़िया माई का झुर्रियोंवाला चेहरा नितर गया।

नीमा चुप रही तो वह उठते हुए बोली, 'हमने तो ऐसे-ऐसे जापे किये कि बालक को लपेटने को टाट का टुकड़ा तक नही और बच्चा जन गया। पर बिटिया, भगवान भी ऐसा कारसाज है कि पता नहीं चलता किस कारखाने से अपना काम किस वक्त चला दे जावे है। जापा और बिटिया का ब्याह सब ऐसे निवाह देवे है कि किसी को कानों-

कान पता नहीं चलता।'

दरवाजे तक कहती चली गई। दरवाज़े के पास जाकर आवाज लगाई, 'बिटिया, किवाड़ भेड़ ले। मैं घटे-दो घटे में आ जाऊँगी।'

नीमा उठकर जाने लगी तो उसे लगा उसके पेट पर अफारा आता जा रहा है। उसे अपनी धोती सामने से इतनी उठी हुई महसूस हो रही थी कि बार-बार लग रहा था बेपर्दगी हो रही है। दरवाजा बन्द करके वह वहीं खड़ी हो गई और देर तक वहीं झिरियों से बाहर का नजारा देखती रही। बाहर लोग आ-जा रहे थे। चूँकि उसे पहचानने की ज़रूरत नहीं थी इसलिए इस बार सबके चेहरे अलग-अलग नहीं थे।

उसे लगा दरवाजे पर कोई आदमी रुका खड़ा है। दो-चार मिनट वह खड़ा रहा। उसने उसे पहचानना चाहा, उसके पहले आदमी से मिलता-जुलता लगा। उसी की तरह लंबा कुर्ता पहने हाथ में झोला लटकाये खड़ा था। उसका सांस रुक गया। एक-आध बार वह दरवाज़े की तरफ बढ़ा, फिर सीधा चला गया। चला गया तो उसने एक लम्बी सांस छोड़ी। उसे लगा उसका पेट अन्दर को उतर गया है।

क्यों आया था ? हो सकता है कोई और हो। वह मेरे दरवाज़े क्यों आयेगा। उसका बस चले तो कुत्तों से नुचवा डाले।

वह लौट आई। आँगन पार करके कमरे तक पहुँचना उसे कठिन हो रहा था। तुलसी के थाँवले की मुँडेर पर दोनों हाथ रखकर और माथा टिका खड़ी हो गई। उसका आँगन पतझरा-सा हो गया था। उसने आँगन की तरफ़ ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहा। तुलसी का बिरवा आप ही आप हिल रहा था। एक के बाद एक करके उसे दो-तीन बातें ध्यान आईं। कहीं वह फिर ना आ खड़ा हुआ हो ? अगर उसने दरवाजा खटखटाया तो वह क्या करेगी ? फिर उसे लगा कहीं दाई के आने से पहले ही बच्चा ना हो जाये ? वह जल्दी-जल्दी कमरे में चली गई।

रज्जन की शक्ल माँ से बिल्कुल फर्क थी। काफी काला और मोटे नाक-नक्श का बच्चा था। दाई ने मालिश करके नहलाते हुए कहा, 'तेरा बेटा तेरे ऊपर नहीं गया बिटिया। बेटी ज्यादा सुन्दर है। नाक तो मालूम ही नहीं पड़ रही। लगता है बाप पर गया है।' वह ट्वैं ·· ट्वैं करके रोये जा रहा था। आवाज काफी तीखी थी।

नीमा चुप थी। अभी तक उसे उसान नहीं आया था। उसके पेट में बार-बार गोला उठ रहा था।

दाई बतियाती जा रही थी, 'मेरा जी तो यही कह रहा था कि हे भगवान, अब मेरी इस बिटिया ने जात-बिरादरी की बदनामी भी ओटी, इतना दुख झेला ··· इसकी गोद बेटे से तो भर दे। सो भगवान ने सुन ली। इसकी उम्र और भगवान लगाए तो तेरा काल कट जायेगा। दस-पन्द्रह साल का ही बनवास है। वो भी इसका मुँह देख के कट जायेगा। फिर तो रानी-महारानी बन के राज करिये। बिटिया का क्या जहाँ घर-बार की हुई, घर भी खाली और कोख भी खाली।'

नीमा को रुलाई आ गई। बड़ी मुश्किल से बोली, 'इन्होंने तो मेरी बात रख ली। पता नहीं कब मेरे मुँह से निकला था ··· वे बिना मुझे कहे अपना काम पूरा करके चले गये। अब कोई कुछ कहेगा, कोई कुछ। अब तो कालख का जीवन जीना है, चाची!'

चाची ने रज्जन को झिडकी लगाई, 'काहे ट्वैं···ट्वैं लगा रहा है ···' फिर बोली, 'तू तो बावली बिटिया है, हमने तो ऐसे-ऐसे बच्चे जनवाये है जिनके बाप तक का पता नहीं। अच्छे-अच्छे, बड़े-बड़े आदमियों की कालख धोई है। जितने ये बड़े-बड़े बने बैठे हैं, किसकी बिटिया के पेट से हरामी नहीं जन्मा। हम खुद औरत है, औरत की कमजोरी भी जाने हैं। जवानी का प्यार तो औरत को ही मारता है। बुढ़ापे का प्यार दूसरों को पालता है। इसीलिए कभी मुँह नहीं खोला। इसी बल पर सीता-सावित्री बनी घूमती है। मुँह खोल दूँ तो सब के मुँह पर कालख पुत जाय। कई के बच्चे तो इधर-उधर पल रहे हैं। एक का तो मैंने ही दिलवाया था। अब मिलती है तो कहती है—दाई, जरा उसे दिखा दो। रुपये देती है ··· ! तू किस बात का दुख मानती

है — तेरे बेटे के बाप को तो सब जानते हैं। और जहाँ तक लोगों की बात है, जब भगवान ने मुँह फाड़ा है और तीन इंच की जबान लगाई है, कुछ ना कुछ तो बोलेंगे ही। ये तो मुँह फटे का बोलना है।'

नीमा के पेट में घूमता गोला कुछ कम होने लगा था। वह आँख बन्द किये चुपचाप लेटी थी।

रज्जन उस दिन रात भर रोया था। नीमा ने सब घरेलू उपचार कर लिये थे पर वह चुप नहीं हुआ था। दरवाज़ा खटखटाया तो वह रोते को खाट पर लिटाकर चली गई। ढाबेवाला आदमी था।

वह मुस्कुराकर बोला, 'पंडतानी राम-राम।'

नीमा चुप रही। वह काफी लटक गया था। नीमा दरवाजे पर ही खड़ी रही। हटी नहीं। वह बोला, 'अन्दर नहीं आने दोगी, पंडतानी?'

उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था क्या कहे और क्या करे। वह फिर भी नहीं हटी।

वह फिर बोला, 'तुम्हारे बेटे का पता चला था। उसे ही देखने आया हूँ। उसे नहीं दिखाओगी? पंडत का बहुत नमक खाया है।'

नीमा हट गई। वह अन्दर हो गया और नीमा के आगे-आगे चलने लगा। उसके जूते आँगन में खट-खट बजते रहे। बहुत दिन बाद नीमा को आँगन में किसी मर्द के जूते बजने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

तुलसी के बिरवे के सामने जाकर नीमा रुक गई। पल्ला थोड़ा माथे पर खींच लिया। वह कमरे के दरवाज़े तक गया पर नीमा को तुलसी के थाँवले के पास रुका देखकर लौट आया।

'पंडतानी, तुमने खबर तक नहीं दी।'

वह खामोश रही। वह फिर बोला, 'हम कोई ग़ैर थोड़ा ही थे। तुम कहलातीं तो क्या आते नहीं। पंडत का भतीजा भी कह रहा था, चाची ने ग़ैर समझा!'

वह पत्थर का बुत बनी खड़ी रही।

उसने अपनी अंटी से कुछ रुपये निकालकर बढ़ाये, 'लो पंडतानी।'

नीमा बड़ी मुश्किल से बोल पायी, 'कैसे?'

'रख लो।'

नीमा ने गर्दन हिला दी।

'तुम्हें जरूरत होगी ना।'

नीमा खामोश रहकर दूसरी तरफ देखने लगी। उसका हाथ रुपये लिये-लिये थोड़ा लटक गया।

वह अपने आप ही बोला, 'कुछ हिसाब होटल का बचा था, कुछ पंडत के किरया-करम का था" सोच तो बहुत दिन से रहा था पर आने का सुभीता ही नही हुआ।'

'अब तो साल भर से ज्यादा होने को आया, जहां इतने दिन खर्चा चला बाकी भी चल जायेगा। उनके किरया-करम में से बचे रुपये घर के किस काम के। उनके नाम से भूखों को खिला देना।

उसका हाथ पूरी तरह नीचे को लटक गया। वह एक-आध वार हकलाया, फिर बोला, 'नही पंडतानी, रुपयों मे छूत थोड़े ही लगती है। धन को मूतक-पातक नही व्यापता। हाथ तंग होगा। बच्चा छोटा है। मदद मिल जायेगी।'

नीमा ने एक पीढा लाकर डाल दिया, 'बैठ जाओ, चाय बना दें।'

वह नीमा की तरफ देखकर बोला, 'चाय ना बनाओ पडतानी, बस दो बात कर लो।'

नीमा चुप रही।

वह बोलता रहा, 'तुम हमे गैर समझने लगी हो। हम बता दें, हम गैर नही हैं। हमने सेवा की भी है और सेवा करना भी जानते है। बात निभायी भी है और निभाना भी जानते है। पंडत का हमने उस घड़ी में साथ दिया जब शहर मे उसका कोई नही था। पंडत ने भी हमको बहुत माना। अब ये पंडत की निशानी है, इसकी सेवा करने दो पडतानी।' उसकी आँखें चमक रही थी।

रज्जन रोते-रोते सो चुका था।

नीमा ने धीरे से कहा, 'आप जाइये, गाहकों का वक्त हो रहा है।'

'एक बात और कहनी थी।'

नीमा रुककर खड़ी हो गई।

'हमें गैर मत समझो। हम भी तुम्हारी उसी तरह सेवा करेंगे। जान निकालकर सामने रख देंगे। पंडत का ही नमक हमारी रगों में है। पंडत का भतीजा जब कहता है चाची से कहो घर खाली कर दे तो हम उससे लड़ जाते हैं। नमकहरामी नहीं कर सकते। नौकरी छोड़ देंगे।'

नीमा को पहली बार गुस्सा आया। लेकिन गुस्से में भी धीमे से बोली, 'भतीजे से कहना, उनके भतीजे होने के कारण मेरे लिए रज्जन की तरह हैं, दर्जे से ही बात करें। उन्होंने टाबे पर कब्जा किया मैंने संतोष कर लिया। जैसा रज्जन वैसे वे। उनके पास रहे या रज्जन के, घर में ही है। रज्जन को अभी दो ही चीज़ चाहिएँ—छत का साया और माँ की गोद। अगर वे यही चाहते हैं कि चाची और उनका भाई सड़क पर भीख माँगे तो भगवान के दरबार में हम भी रो-गा सकते हैं।'

वह गर्दन नीची करके बोला, 'पंडतानी, यही मैंने भी समझाया था पर वो तो गन्दी-गन्दी बातों पर उतर आता है। तुम्हारे सामने क्या कहूँ, कहते नहीं बनता।' रुककर बोला, 'इतना ही समझ लो वो तुम्हें पंडत की ब्याहता नहीं मानता। एक दिन मैंने उससे कह भी दिया ... उस बेचारी की पीठ पर कोई मरद नहीं इसलिए सब कुछ कह लेते हो, नहीं तो ऐसा कभी ना कहते। वह कहता है तुम तो हो ... तुम ही रोक लो। फिर मेरे लिए उल्टा-सीधा बकने लगता है। चाचा तो बूढ़े थे... इसके पीछे तो तुम्हीं हो। नौकरी ना होती तो ...'

नीमा ने सिर का पल्ला पीछे को कर लिया, 'जाओ अपनी नौकरी करो। आज के पीछे इस दरवाज़े बिना बुलाये मत आना। ब्याहता हूँ या रखैल, तुम दोनों से माँगने नहीं जाऊँगी। जाऊँ तो चोटी पकड़कर सड़क पर घसीटना।'

वह एकाएक खड़ा हो गया। और खड़ा ही रहा। नीमा मुड़कर अंदर जाने लगी तो थरथराती आवाज़ में बोला, 'एक बात सुनती जाओ, फायदे की बात है।'

नीमा ठिठक गई।

'पंडत के भतीजे ने कहलाया है। पाँच सौ, हज़ार रुपया लेकर

मकान खाली करो तो वह रुपया पहुँचवा दे।'

'सोचूँगी।'

'दो-चार दिन में पूछ जाऊँ?'

'नही।' कहकर वह अन्दर चली गई।

थोडी देर कुछ सुनाई नही पडा। रज्जन फिर रोने लगा था। उसका रोना फिर उभर आया था। नीमा ने जाकर उसे सीने से लगा लिया। उसका रोना कुछ कम हुआ। नीमा ने उसे और अधिक सटा लिया।

ढाबेवाले आदमी के जल्दी-जल्दी लौटने के कारण जूतों की आवाज़ जल्दी-जल्दी सुनाई पड़ने लगी। नीमा को लगा उस आवाज से उसका दम घुटता जा रहा है। नीमा ने रज्जन को और अधिक सटाकर उसका सहारा लेना चाहा।

आँगन से उस आवाज़ के पूरी तरह रिस जाने के बाद रज्जन को लिये वह तेजी से दरवाज़े की तरफ गई। वह जाता हुआ ढुका गया था। नीमा ने एक हाथ से दोनों किवाड़ो को मिलाकर बन्द किया और कुंडी चढा दी। कुंडी चढ़ाकर वह वही खड़ी सुस्ताती रही। रज्जन नीद मे होते हुए भी बीच-बीच मे रोना चालू कर देता था।

नीमा को वहाँ खड़े-खड़े लगता रहा वह ढाबेवाला आदमी अभी भी मौजूद है। उसने दरार से बाहर देखने का इरादा किया, पर बाद मे मुलतवी कर दिया। आखिर वह क्यो देखे? उसे लग रहा था उसके अन्दर कोई चीज एकाएक कम हो गई है। ना अब वह उतनी तेजी से सोच सकती है और ना बोल सकती है और ना इतनी बदहवासी ही बटोर सकती है जिसमे वह लगातार गरियाती चली जाये। पहले वह पटते-पिटते भी कहने से नही चूकती थी। उसकी जबान के आगे पहले आदमी के हाथ बेमायने हो जाते थे। वह खिसियाकर और अधिक मारता था।

वह लौटने लगी तो उसी ढाबेवाले की आवाज थी, 'तुम्हारा चाचा बहुत पहुँचा हुआ था, छोटे पंडत। बुढापे में भी ऐसी बिगड़ैल घोड़ी पर सवारी गाँठ ली। इसके तो लगाम तक लगाना मुश्किल है।'

दूसरा आदमी हँसा, 'अरे चच्चू, उसके सामने कहते। अब तो कुंडी चढ़ाकर चली गई। तब बताती ! पर यह सही है औरत महलों को ठुकरा दे और घूरे पर जान दे मरे। अपनी चीज अपनी मर्जी...।'

'हाँ छोटे पंडत, अपनी कुल्हिया में कोई दूध भरे या बालू...'

दूसरा आदमी हँस दिया।

नीमा का मन दरवाजा खोलकर उसके मुँह पर थूक देने का हुआ। पर मुँह मे आया थूक उसने जमीन पर थूक दिया। थोड़ी देर तक बार-बार उसके मुँह में थूक आता रहा। और वह कोने में थूकती रही। रज्जन फिर जोर-जोर से रोने लगा। नीमा उसे हिलाने लगी। चुप नहीं हुआ तो नीमा काफी जोर से बोली, 'अरे कमबख्त, पेट में आते ही तो घर उजाड़ दिया। रही-सही इज्जत भी धूल में मिला दी। किसी दिन गुस्सा आ गया तो गला घोंटकर ईदगाह पर डाल आऊँगी। तेरे ही मारे...' दो-दो-कौड़ी के आदमी मेरे दरवाजे पर खड़े होकर गाली दे जाते हैं। तू ना हुआ होता...इज्जत तो ना जाती।'

रज्जन चुप नहीं हुआ तो वह भी उसके साथ रोने लगी। थोड़ी देर बाद बच्चा नींद में आ गया पर नीमा सिसकती रही।

दाई तीसरे-चौथे चक्कर लगा जाती थी। जब से बच्चे की तबीयत खराब हुई थी दाई का चक्कर नहीं लग सका था। नीमा के हाथ-पैर टूट-से गये थे। कभी-कभी दिन छिपे बच्चे को गोद में दबाकर निकल जाती थी और रुपये-दो रुपये का सौदा सुलफ ले आती थी। एक-दो बार बच्चे को होमियोपैथी के खैराती अस्पताल में भी दिखा लायी थी। उस दवा से रज्जन को फायदा भी हुआ था। उसके बाद कई बार वह अस्पताल ले गई पर डाक्टर नहीं मिले।

दाई आई तो नीमा का जी भर आया। वह बच्चे को हुमककर उसके पास ले गई पर बोला नहीं गया। सिर्फ़ हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। बच्चा उसकी गोद में दे दिया। काफी देर तक वह उसी तरह चुप बैठी रही। जब उसका बोल फूटा तो उसने यही पूछा, 'चाची, तू भी इतनी बेमुरव्वत हो गई? साथ छोड़ दिया? समझ लिया होगा

ग़रीबनी है, दे तो कुछ सकती नहीं। इसके फटे में कौन पैर दे। पर चाची, सब का एक-एक पैसा चुकाकर मरूँगी। अगले जनम के वास्ते कर्ज़ा लादकर नही जाऊँगी। इस जनम में तो पिछले जनम का किया भोट रही हूँ, अगला जनम तो सकारथ लग जाय। तेरा सहारा था तूने मुँह मोड़ लिया, ठीक ही किया "पर मैं भी मरनेवाली नही। रज्जन को पालकर दुश्मनों के कालजे पर मूँग दलने को छोड़कर जाऊँगी।'

दाई ज़ोर से हँस दी, 'अरी बिटिया, इतनी नाराज नही हुआ करने। मैं भी तो जलगई, सत्तर साल की होने को आई। चला जाय ना फिरा जाय। पर चाहूँ यहीं हूँ काम करते, रोजी-रोटी कमाते, अपने हाथो-पैरो जाऊँ। नहीं तो कोई किसी का नहीं"'बेटा-बहू सब चलती के हैं। बस मुझे सोपता ही नही मिला। रोज जी तड़पता था देख आऊँ"'बिचारी मुसीबत में है" अच्छा अब जल्दी-जल्दी आया करूँगी।'

नीमा का मरा हुआ मन कुछ कम हुआ। एक मिनट चुप रहकर बोली, 'चाची, तू भी औरत है। तू तो जानती होगी। औरतें अपने औरत होने से क्यों मजबूर हो जाती है। उसके पास रहती थी तो रात दिन हड्डे तोड़ता था। लोग कहते थे"'तेरे कोई और नही है क्या, जो जो हर समय हड्डे तुड़वाकर भी यही पड़ी रहती है। यहाँ आ गई तो लोग समझने लगे मैं मनमौजी घोड़ी हूँ, जिस सवार को चाहूँ बिठाऊँ जिसे ना चाहूँ ना बिठाऊँ।'

दाई बिना बोले सुनती रही। नीमा फिर बोली, 'तुम उस दिन कह रही थी कि तुम लोगों की जात में औरतों का उठना-बैठना चलता रहता है "हमारी जात में औरतों को ना धूप मे रहने दिया जाय ना छाँह मे। कहने को हम ऊँची जात के हैं।'

'अरी छोड़, मेरी समझ में यह सब नहीं आता। मेरी समझ में तो सीधी-सी बात आती है। हम लोग दोरड़े का कपड़ा है। सूजा गोबकर निकाल लो। फिर वैसा का वैसा। बड़ी जात वाले मलमल का कपड़ा हैं, सुई भी चलाओ तो भी पता चल जाय कि यहाँ से सुई निकली थी।'

नीमा चुपचाप सुनती रही।

दाई फिर बोली, 'तू इतना सोचा-विचारा ना कर। सोचना-विचा-

रोता था। जैसे-जैसे रोता था वैसे-वैसे मेरा दूध और सूखता। तेरे चाचा का जी दुखी होता था। कभी-कभी मुझ पर हाथ भी छोड देते थे। कहते थे चोर कहीं की, इतनी देह लिये घूमती है बच्चे का पेट तक नहीं भर सकती। उन्हे बच्चों से प्यार बहुत था। बच्चो को रोते नही देखा जाता था। इसलिए हाथ छोड़ देते थे...'

दाई सांस लेकर फिर बोली, 'ले, तुझे ये भी बता दूँ—एक रात को जब बहुत रोया तो उन्होंने फिर हाथ छोड़ा। मेरे मुंह से निकल गया " कमा के लाते नही, रोटी जुड़ती नही...दूध की जगह क्या इसे मूत पिला दूँ...ऐसी ही माया है तो करते क्यों नही काम। कमाया नही जाता तो चोरी-चमारी करो। बस मेरा कहना था, वे घर से बाहर ! मेरे गले में परान अटक गये। वो रात भर भूख के मारे रोता रहा, मैं अपने बोल की चोट से तड़पती रही। बिटिया, अपने ही बोल की चोट सबसे गहरी होवे है। मरे नही मरती। वे सीधे अपने पहले मालिक के यहाँ गये। राम जाने उन्होने की या नहीं... वो तो कहते थे, उसे जाकर गाली दी थी कि मेरे भूखों मरते बच्चो का जिम्मेदार कौन होगा...! पर उन्हे चोरी के इलज़ाम में पकडवा दिया।'

दाई ने आँखें भर ली। भरने पर भी वे उतनी भीगी नही दिखाई पड़ी जितनी नीमा की थी। नीमा धीमे से बोली, 'हाँ चाची, ठीक कहती हो। चोट अपने ही बोल की ज्यादा लगती है।'

दाई बोली, 'अब भी लगता है उस दिन मैंने ही अपनी राह जाते बुरे दिनों को आवाज़ देकर बुलाया था। तीन महीने जेल मे रहे। दिन कैसे कटे मैं ही जानती हूँ। एक तो दो जीवों के पेट की आग, दूसरे अपने बोल का चूल्हा—जैसे मैंने ही उनका हाथ पकड़कर जेल मे धकेल दिया हो। पर बुरे दिनों को तिनके की तरह सिर झुकाकर गुजारा जावे है।'

नीमा चुपचाप उठकर गई। फिर आकर चुपचाप बैठ गई। रज्जन दाई की गोद मे चुपचाप सो रहा था। उसकी तरफ हाथ बढ़ाकर कहा, 'लो चाची, इस जंजीर को गिरो रख आओ। मेरी माँ ने ब्याह के वखत गले मे पहनायी थी। वहाँ इसे दबाये रही, पता नहीं चलने दिया।

रना मरदों का काम है। तन भी छीन होवे और मन भी। लोग कहने को बने, हम सुनने को। इधर से सुनो उधर से निकाल दो। किसी सुआँखे को कह दे कि तू अन्धा है तो उसके कहे से अन्धा थोड़े ही जावेगा। अब बता तेरा बिटवा कैसा है ? वही तेरा सहारा है, उसी पर तवज्जो दे। यही तेरी इज्जत और जमा है।'

'कई दिन से रोये-रोये जा रहा है। लालाओं के खैराती अस्पताल में भी दिखाया। दवा से फायदा हुआ था, फिर डाक्टर ही नहीं मिला।'

'मुझे तो लगे है इसका पेट नहीं भरता। तेरे दूध होवे या नहीं ? आजकल की पढ़ी-लिखी लोंडियों के तो किसी के दूध नहीं उतरता। सब डिब्बे का दूध देवे है,'···'हँसकर बोली, 'बड़े होके इस बात की फिकर नहीं रहेगी कि माँ का दूध हलाल करना है।'

नीमा को भी हँसी आ गई, लेकिन तुरन्त ही रुआँसी होकर बोली, 'चाची, दूध कहाँ से हो। उनका भतीजा तो घर से निकालने को घूम रहा है। उसका जमदूत आया था। पता नहीं उनके भतीजे के लिए मकान की कहने आया था या अपने लिए औरत फुसलाने आया था। मैंने तो उसे दुतकार के निकाल दिया।' रुककर बोली, 'घर में तो इतना भी नहीं दो वखत की रोटी का ही जुगाड़ हो जाये। सोचती हूँ इस मकान को छोड़कर कहीं और चली जाऊँ। किसी के यहाँ रोटी बनाकर इसे पालने का डौल तो हो जायेगा। हर वखत मेरी खाल चुसर-चुसर करता है। कुछ मिलता नहीं तो भुँझलाता है। रोता है। खून का दूध कहाँ तक बनेगा !' नीमा एक साँस में सब कह गई।

चाची बोली, 'पहले वाला हुआ था तो तेरे चाचा की नौकरी छूट गई थी। वो जमाना इतना पत्थर नहीं था। अब तो जहाँ मुँह मारो वहीं पाथर। जिजमानों के यहाँ से रोटी-टुकड़ा मिल जावे था। पर बिटिया, देह में तो दूध अपनी कमाई रोटी का ही बने है। कभी-कभार रोटी मिलती है तो उसे देह ही खा जावे है। राम जी रखो, उस वखत तो मेरी देह भी तगड़ी थी। तुम लोगों जैसी गिरीमरी नहीं थी। पहले दूसरे महीने में तो घुटना मारकर मन भर का बोझा सिर पर रख लूँ थी। नौकरी छूट गई तो देह में दूध बनना ही बन्द हो गया। रात भर

रोता था। जैसे-जैसे रोता था वैसे-वैसे मेरा दूध और सूखता। तेरे चाचा का जी दुखी होता था। कभी-कभी मुझ पर हाथ भी छोड़ देते थे। कहते थे चोर कहीं की, इतनी देह लिये घूमती है बच्चे का पेट तक नहीं भर सकती। उन्हें बच्चों से प्यार बहुत था। बच्चों को रोते नहीं देखा जाता था। इसलिए हाथ छोड़ देते थे···'

दाई साँस लेकर फिर बोली, 'ले, तुझे ये भी बता दूँ—एक रात को जब बहुत रोया तो उन्होंने फिर हाथ छोड़ा। मेरे मुंह से निकल गया ·· कमा के लाते नहीं, रोटी जुड़ती नहीं···दूध की जगह क्या इसे मूत पिला दूँ···ऐसी ही माया है तो करते क्यों नहीं काम। कमाया नहीं जाता तो चोरी-चमारी करो। बस मेरा कहना था, वे घर से बाहर! मेरे गले में परान अटक गये। वो रात भर भूख के मारे रोता रहा, मैं अपने बोल की चोट से तड़पती रही। बिटिया, अपने ही बोल की चोट सबसे गहरी होवे है। मरे नहीं मरती। वे सीधे अपने पहले मालिक के यहाँ गये। राम जाने उन्होंने की या नहीं··· वो तो कहते थे, उसे जाकर गाली दी थी कि मेरे भूखों मरते बच्चों का जिम्मेदार कौन होगा···! पर उन्हें चोरी के इलजाम में पकड़वा दिया।'

दाई ने आँखें भर लीं। भरने पर भी वे उतनी भीगी नहीं दिखाई पड़ीं जितनी नीमा की थीं। नीमा धीमे से बोली, 'हाँ चाची, ठीक कहती हो। चोट अपने ही बोल की ज्यादा लगती है।'

दाई बोली, 'अब भी लगता है उस दिन मैंने ही अपनी राह जाते बुरे दिनों को आवाज़ देकर बुलाया था। तीन महीने जेल में रहे। दिन कैसे कटे मैं ही जानती हूँ। एक तो दो जीवों के पेट की आग, दूसरे अपने बोल का चूरहा—जैसे मैंने ही उनका हाथ पकडकर जेल में धकेल दिया हो। पर बुरे दिनों को तिनके की तरह सिर झुकाकर गुजारा जावे है।'

नीमा चुपचाप उठकर गई। फिर आकर चुपचाप बैठ गई। रज्जन दाई की गोद में चुपचाप सो रहा था। उसकी तरफ हाथ बढ़ाकर कहा, 'लो चाची, इस जंजीर को गिरो रख आओ। मेरी माँ ने ब्याह के बखत गले में पहनायी थी। वहाँ इसे दबाये रही, पता नहीं चलने दिया।

नही तो वह कब का बेच चुका होता। लेकिन अब मेरे साथ इसका वखत भी आ गया।'

दाई ने उल्टा-पुल्टा, फिर बोली, 'बिटिया, गिरो रखकर क्या मिलेगा। सूद मे ही चली जायेगी। मैं तो जानूं इसे बेच दो, बेचने पर सौ-दो सौ पल्ले पड जायेंगे। नही तो पचास-साठ में ही जंजीर साहूकार की हो जायेगी। मेरे पास तो चाँदी के दो-चार लच्छे और कड़े थे। जब दो तीन-बार के सूद मे वे चले गए तब अकल आई। मुसीबत मे जेवर ही कंधा देता है।'

'तो चाची, बेच ही दो। थोडी माया लगती थी। माँ की यही निशानी बची थी। पर तुम ठीक कहती हो...इतना कहाँ से आयेगा जो छुड़ा लूंगी। मोह करे से पैसा भी जायेगा और जंजीर भी। तुम बेच ही आओ।'

दाई उठने लगी तो नीमा ने कहा, 'कही दूर-पार रोटी बनाने का काम हो तो बताना। बर्तन-वर्तन तो नही माँजे जायेंगे पर रोटी बना दूंगी। रख तो बच्चे भी लेती पर अपना है, अपने को छोड़कर दूसरो के पालूंगी तो अपने मे ही मन पड़ा रहेगा। और ये बड़ा होकर कहेगा माँ थी या दुश्मन...! दूसरो के पालती घूमती थी और अपना...। जब तक समझने लायक होगा तब तक चल बसूंगी।'

'इस घर का क्या होगा?'

'सोचती हूँ मेरा इस घर पर क्या हक। कौन उनकी ब्याहता हूँ। इसे भी उनके भीतजे को ही सौप दूं। मैं नही चाहती मेरे रज्जन को कोई कोसे-काटे या उन मरे हुओ की बदनामी करे। जब वे ही नही रहे तो घर रखकर क्या होगा। भतीजा कुछ देना चाहेगा, तो देगा। आदमी के साथ ही औरत को सब अच्छा लगता है। आदमी ही नी रहा जिसकी सब राम-रौनक होती है तो घर-बाहर ही कहाँ तक सुख पहुँचायेगा।'

'तेरी मरजी, बेटी।' थोड़ा रुककर बोली, 'वे तेरे पहलेवाले पडतजी आये थे क्या?'

'नही तो।'

'अच्छा!'

'क्यों ?'

'मिले थे तो कह रहे थे।'

नीमा चुप रही। उसे लगा दरवाज़े पर कोई खटखटा रहा है। उसके चेहरे पर हल्की-सी उत्सुकता उभर आई। वह उसे दूसरी ओर ले गई, 'बिटिया का क्या हाल है ?'

'बिटिया ठीक है। कह रहा था नीमा से कहना अब तो उसका आदमी रामजी को प्यारा हो गया। आना हो तो अभी भी चली आये। किसी तीसरे का दरवाज़ा खटखटाने से तो अच्छा है अपने घर ही लौट आये। अगर नहीं आयेगी तो मैं बिटिया का कहीं करार करके दूसरी ब्याह लाऊंगा।

नीमा का चेहरा तमतमा आया। ज़ोर से बोली, 'चाची, उससे कह देना, लाकर मन की निकाल ले। हम भी देखेंगे कितने दिन निभायेगी। कितनी बदनाम हो गई होऊँ कुछ ना कुछ अच्छाई मुझमें भी है। सारे जग की मैं ही अकेली बुरी नहीं। उस छोटी-सी बच्ची की जिन्दगी खराब करके अगर घर बसाना चाहता है तो वो भी सुखी नहीं रह सकता...।' नीमा के चेहरे से लगा उसकी समझ में नहीं आ रहा वह आगे और क्या-क्या कहे। रुककर अपने को सँभालती हुई बोली, 'चाची, उससे कहना अगर उसे यही सब करना है तो बिटिया को मेरे पास भेज दे। दोनों बच्चों को लेकर रातों-रातों कहीं चली जाऊँगी। फिर चाहे जहाँ अपनी आग बुझाये।'

दाई ने उसकी तरफ देखकर कहा, 'जब तेरा आदमी इज्जत से बुला रहा है तो बिटिया चली क्यों नहीं जाती ?'

पहले तो नीमा एक-दो मिनट चुप रही, फिर बोली, 'चाची, अपनी तरफ से कोई बात नहीं करता। सब किसी ना किसी की तरफ से बात करते हैं। तुम तो कम से कम मेरी तरफ की बात करो। जिसने घर में रहते इज्जत नहीं की वो अब घर से जाकर लौटे हुए खोटे सिक्के की क्या कदर करेगा। जाकर वापिस आई औरत तो दूर से ही दीवार में लगी सेंध की तरह चमकती है। आदमी को तो भगवान ने सोने का बर्तन बना कर भेजा है। कभी झूठा नहीं होता। औरतें मिट्टी का

सकोरा है। मुंह को लगाओ और फोड़ दो।' थोड़ा सांस लेकर बोली, 'चाची, तुमने तो दुनिया देखी है, फिर मुझे ऐसा पाठ क्यों पढ़ा रही हो जो मुझे हर तरह बरबाद कर दे।'

'तेरी राजी बिटिया, मैंने भले के लिए कहा था। मैं तो अपने लोगों की जानूं, तुम बड़ों की क्या जानूं। वही जानूं सुबह का भूला शाम को घर आ जाय तो भगवान की बड़ी किरपा माननी चाहिए। चुचकार के माथे लगाना चाहिए। हमारे यहां तो औरत, औरत है। ना मिट्टी का कसोरा, और ना खोटा सिक्का।'

दाई उठने लगी तो नीमा ने हाथ पकड़कर बिठा लिया, 'चाची, मेरा बोला सदा मुझे ही खावे है। तुम नाराज मत होना। मेरी नजर हर वक्त दरवाजे पर लगी तेरी ही बाट जोहती रहे। पर आज जो तुमने कहा है वह मेरे जी के आर-पार हो गया। ये रज्जन मेरी जान को ना लगा होता तो मैं जमना में कूदकर प्राण दे देती। पर ये तो कमबख्त गले मे पत्थर बनकर लटक गया है, ना मरने ही देगा और ना जीने ही।'

दाई पोपला मुंह खोलकर हँस दी, 'बिटिया, तू ही बुरा मान गई। मैंने तो अपनी बिटिया से भी यही कहा था। बिटिया क्या भतीजी। सगी भतीजी भी तो बिटिया ही हुई ना। उसका भी तेरी ही तरह हुआ था। जिसके घर दुबारा जाकर बैठी वह उसे छोड़कर भाग गया। मैंने उससे यही कहा—बेटी, तेरा पहला आदमी मुंह खोले तेरी बाट जोह रहा है। जिन्दगी किसी के सहारे बिना तो कटेगी नहीं। तन-मन दोनों ही भूखे तुझे खायेंगे। तीसरे का अनजाना घर झांकने से तो अच्छा तू वहीं चली जा। उसका यह तो पता है किस करवट मारता है। मारकर धूप मे डालता है या छाँह में। नये का तो कुछ भी पता नहीं होता। वो मान गई। वो ही बात मैं तुझे समझा रही थी। कभी-कभी मार-पिटाई भी जरूरी है। दोनों गुत्थम-गुत्था तक हो जावें है पर फिर वैसे के वैसे ही, एक! कुल मिलाकर मजे मे है। कहीं और जा बैठती तो पता नही कैसी बीतती। पर बेटी, वे तुम लोगों की तरह बड़ी जात के नहीं।'

नीमा दुख के साथ बोली, 'दादी, तू भी यही समझ रही थी, कि मैं यहाँ ना यहीं आकर बैठे बिना नहीं रहूँगी।'

'बिटिया मैं तो मानुस जैसी जोगन की बात करूँ हूँ। देवी देवता तो देखे नहीं। सब भी भाग तो सब यही कहें पर डूब मर, नहीं डूबती तो मैं तुझे जगाऊँ। मेरी दादी सोलह साल की रांड हो गई थी। अस्सी साल तक जी। जब मरी तो उसके दांत वैसे के वैसे ही मोती से थे। ऐसा लगे था कि कभी मुँह चलाकर ही नहीं खाया। जैसे लायी थी वैसे ही लिये चली गई। आँखें बिल्कुल सही की ठीक थी। जैसे अभी-अभी मोती से धोली हों। बुढ़ापे में भी वे मोटी मोटी होवे थी। सब साल ही धोखा दे गई थी। बैठी की बैठी चली गई। मरने से एक दिन पहले बापू को बुलाया और बोली—बेटा, अब अपना चला-चली का वखत है। पता नहीं कब टूल जाऊँ। उसे पता चल गया था। बापू ने कहा भी, नहीं अभी तू तो सौ बरस तक जीवेगी। ब्याहों में गावे बहुत अच्छा थी। हँसकर बोली—तेरी पोती का ब्याह होगा तो कौन गावेगा…मैं पास ही खड़ी थी। तब ब्याह का पता था ना मतलब का… ही ही हँसती रही। ऐसी सूरत थी।'

रज्जन रोने लगा तो नीमा उसे हिलाने लगी। दाई ने उसे गोद में ले लिया और उसका पेट देखने लगी। पेट देखते-देखते बोली, 'तो दादी बोली, अब जीने को ज्यादा जी नहीं। पर तू एक बात मेरी समझ ले। भगवान ना करे दुश्मन के घर की बेटी जवानी में रांड हो तो उसका दूसरा ब्याह कर दियो। कभी बनिये-बाभनों की देखा-देखी ना करे। वैसे भगवान ने चाहा तो अब रंडापा किसी को नहीं ओटना पड़ेगा। सबके बाँटे का मैंने ओट लिया। तीन बीसी ऊपर चार साल रंडापे में काटे। तू चार महीने का था जब तेरा बाप मरा था। घरवालों ने बहुत कहा पर मैं ही नी मानी। जमींदार की बेटी भी ऐसी हो थी। पर वो सापनी बन गई थी। जब तेरा बाप मरा तो मैंने भी यही सोचा था। घरवालों ने भतेरा कहा पर मेरे ऊपर तो बड़ी जात वालों का परभाव था। नहीं मानी। बाद में पता चला अपनी ही चाल चलना चाहिए। अपना ही तरीका ठीक हो।'

दाई ने चुप होकर नीमा की तरफ देखा। वह बड़ी गौर से सुन रही थी। दाई उसकी तरफ देखकर मुस्कराई, फिर भारी आवाज़ में बोली, 'दादी मेरे बापू का हाथ पकड़कर ले गई। अन्दर की कोठरी में लकड़ी की चौखट थी। उसे दिखाकर बोली—तू बेटा है तेरे, से क्या सरम। इस चौखट को देख, इस पर जगह-जगह मेरे दाँतों के निशान पड़े हैं। जब उचंग उठती थी और ज्वाला भडकती थी तो जाकर चौखट मे दाँत गाड देती थी।'

दाई चुप हो गई। उसका पोपला मुँह छोटा होकर गुचमुच हो गया। थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही। दाई की सब बातें एक-एक करके एक के ऊपर एक चिन गई थीं। नीमा को लगा वह उन सब के नीचे कहीं दबी है। दाई की गोद में नीमा का बेटा चुपचाप सो रहा था।

दाई रज्जन को नीमा की गोद मे देती हुई बोली, 'ले बिटिया, ज्यादा रोया करे तो तवा गरम करके इसी के पोतड़े से इसका पेट सेक दिया कर।' फिर बोली, 'शाम तक तेरे रुपये पहुँचा जाऊँगी। बात का बुरा मत मानियो। हम लोग कमजोर होते है इसलिए ऐसी बात करते है।' इस बार वह काफी देर बाद हँसी।

दाई उठी तो नीमा भी उठ गई। वह उसके साथ तुलसी के बिरवे तक आई। तुलसी का बिरवा लहरा रहा था। नीमा बोली, 'पता नहीं भाग में क्या लिखकर भेजा है। मेरा बोल भगवान पर सहा नहीं जाता। बड़ा बोल किस बल पर बोलूँ। पर चाची, अब तीसरे मरद का पाप नहीं ओटूँगी। जाना ही होगा तो अपना थूका चाटकर पहले के पास ही चली जाऊँगी। पर मन नहीं ठुकता।'

दाई बिना कुछ कहे चली गई। दरवाज़े से निकलकर बोली, 'बिटिया किवाड़ बन्द कर ले।'

नीमा वहीं खड़ी रही। उसे लगा कहीं वो ही तो नहीं खड़ा। लेकिन काफी देर तक वहाँ कोई आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। लौटकर वह थाँवले के सहारे टिककर खड़ी हो गई। धूप से ढकी वे सब अटारियाँ उसको अपने सिर पर उठी-सी मालूम पड़ती रहीं। नीमा ने गर्दन हिलाई तो सब कुछ एक साथ खिल गया। फिर रुकते-रुकते ही रुका।

नीमा का घर धीरे-धीरे गहता जा रहा था। बड़ा-बड़ा सब सामान बिक गया था। कर्ज़ बढ़ गया था। वह कर्ज़ के डर से सदा डरी रहती थी। कभी जब दाई आती थी तो वह उसके हाथों कुछ ना कुछ बिकवा देती थी। जब कभी कोई बडी चीज़ बिकवाती थी तो रुपया-अधेला उसे भी दे देती थी। जब से छोटी चीजो की नौबत आई थी तब से नीमा के लिए एक गिलास चाय पिलाना भी भारी पड़ने लगा था। कभी-कभी जब वह चाय दे देती थी तो चाय पीते-पीते दाई कहा करती थी, 'बिटिया, ऐसे कब तक चलेगा ?'

नीमा कुछ देर चुप रहकर सोचती रह जाती। कुछ देर बाद कहती, 'क्या करूँ चाची ? सोचती हूँ इस मकान को देकर कही चली जाऊँ, कुछ काम-धाम करके पेट की रोटी का जुगाड़ करूँ। मकान देख-कर कब तक पेट भरूँगी। सब कुछ बिक लिया, घर ही बचा है।'

'बाहर निकला कर। शरम आती हो तो एक-आध बार मेरे साथ चल। बाहर पैर निकालेगी तो आदत पड़ेगी। काम-धाम भी बिना बाहर निकले थोड़े ही होगा।'

दाई की बात पर नीमा पहले तो चुप हो जाती थी, फिर कहती, 'बाहर निकलती हूँ तो लगता है जैसे आदमी की खाल ओढे हुए कोई ऐसा खिलौना हूँ जिसके पास तन ही तन है। मन, आत्मा कुछ नही। मैं उस नज़र को सह नही पाती। पता नही लोग मुझे ऐसा क्यों समझते है। मन होता है अपनी सूरत खुरच डालूँ या मैं अपने शरीर में से औरतपन को सेब की गुठली की तरह निकालकर फेंक दूँ।'

दाई हँस देती, 'तू तो मेरी पागल बिटिया है। तुम लोगो मे बातें करने का फितूर होवे है। औरत होने को छोटी चीज समझो हो। मरद जब अपना मरदपन निकालने की नही सोचता तो हम औरतपन क्यों निकाल कर फेंक दें। जो हमारा धरम है वो तो निबाहेंगे ही। नही निबाहेंगे तो भी पाप चढेगा। भगवान कहेंगे काहे के वास्ते तुझे औरत बनाकर भेजा था।'

'नहीं चाची, मैं इस मकान को छोड़कर यहाँ से कही चली जाना चाहती हूँ। मेरा मन यहाँ पारे की गोली की तरह हिलता रहता

है। तुम उसको बुलाकर ला दो, ढाबे पर जो वो लम्बा-सा मिस्सर काम करता है। छोड़कर तो मैं वैसे ही चली जाती, तुम्हारे हाथ ताली भिजवा देती। मन में लालच भरा है। मकान की ऐवज में कुछ रुपये मिल जायें। कहीं जाऊँगी तो खाने-पीने का ठौर-ठिकाना हो जायेगा। नहीं देगा तो यहीं पड़ी सड़ती रहूँगी।' रुककर कहा, 'रज्जन के जनम का तुम्हारा भी कर्ज सिर पर चढ़ा है। उसे भी चुकाना है।'

'अरी मेरा इनाम तो उसी दिन मिल गया जिस दिन तूने बेटा जना। बेटा-बेटी जनवाकर हम भी कुछ देर के लिए फिर से अपने को माँ समझने लगे है। कभी बेटे की माँ और कभी बेटी की माँ। तूने तो मुझे बुढ़ापे में बेटे की माँ बनाया है। तेरे बेटे ने मेरी एक बीसी ऊपर पाँच की गिनती पूरी कर दी।'

'मुझे तो देना ही है। यहाँ नहीं दूँगी तो वहाँ देना पड़ेगा।'

दाई उठी और बोली, 'अच्छा चलूँ...आज खाने को है?'

नीमा चुप हो गई।

'तो मैं पड़चूनिये के यहाँ से आटा, नमक, दाल ला देती हूँ, पैसे फिर चले जायेंगे।'

'नहीं।' रुककर कहा, 'पैसा कहाँ से चुकाया जायेगा। अब तो दो-चार बर्तन और कपड़े रह गये हैं।'

'मैं लाये देती हूँ।'

नीमा ने हाथ पकड़ लिया, 'नहीं...।' वह आगे कुछ कह नहीं पाई। थोड़ी देर हाथ पकड़े रखा। फिर बोली, 'अब उधार नहीं मँगाऊँगी। दो रोटी रखी हैं वे ही खा लूँगी। ना हुआ तो फूल की एक थाली बिकवा दूँगी। थाली भी रोटी से ही भली लगती है। घर में खाली थाली रखी क्या अच्छी लगेगी।'

दाई जाने लगी तो नीमा ने फिर कहा, 'ढाबेवाले मिस्सर से जरूर कह देना चाची। अब तो उसी पर आस है।'

दाई चली गई तो नीमा रसोई में बर्तन सँवारने लगी। फूल के बर्तनों में थाली और दो लोटे बचे थे। बाकी पीतल के बर्तन थे। कलसा और पानी का एक छोटा गर्मा वह पहले ही बिकवा चुकी थी।

उसका आदमी कहा करता था दुकान पर इतने बर्तन है कि पचास आदमियो को एक साथ खाना खिला दे। ज्यादातर वह फूल के बर्तन खरीदता था। उसका कहना था फूल के बर्तन फूट में बिक जाते है और अच्छे दाम दिला देते हैं। अगर कभी ढाबा बन्द भी होने की नौबत आ जाय तो बर्तन बेच-बेचकर ही खाना-पीना चलता रहेगा। हालाँकि बहुत कम बोलता था। लेकिन कभी जब नीमा और अपनी उम्र का फर्क सामने आता था तो वह उत्तेजित होकर बातें करने लगता था।

नीमा ने कुछ बर्तनो को अलग छाँट लिया। उन्हें बेचा जा सकता था। फूल का लोटा, छोटी थाली और बटलोई वगैरह रोक ली। कुछ पीतल के बर्तन रह गये। जब खाने का सामान होगा तो बनाने के लिए भी बर्तन चाहियेंगे। उसका आदमी बर्तन बेचने की बातें ही किया करता था। नीमा के सामने वह मौका कई महीने से था। वह बहुत कंजूसी के साथ बर्तन बेचती रही थी। नीमा के आदमी को कई बार लगता था कि जब वह बूढा हो जायेगा तो ढाबा बन्द कर देना पड़ेगा। नीमा का मन कई बार हुआ कि वह कह दे कि तब तक उसकी उम्र भी काफ़ी हो जायेगी। जरूरत पड़ेगी तो वह जाकर ढाबा देखा करेगी। रोटी सेक-सेककर गाहको को भी खिला लेगी। लेकिन ये सब तो उस वक्त की बातें थी जब उसका आदमी जिन्दा रहता और दुकान हाथ से ना गई होती। अब तो सवाल ही नही उठता। ना वो ही रहा और ना दुकान ही रही। सुना है उसके भतीजे ने फूल के बर्तन बेचकर दुकान पर चीनी के बर्तन रख दिये है। बड़े लोग उन बर्तनो मे खाना बुरा समझते है। चीनी के बर्तनो की ना जात होती है ना बिरादरी। धोये और रख दिये। उसका आदमी चाहे जितना भी लाचार हो गया होता ऐसा कभी न होने देता। बड़ी सुचवाला आदमी था।

रसोई के बाद उसने कमरे में पड़ी चीजें सँवारनी चाहीं। रज्जन सोया हुआ था। उसे लगा अब वहाँ सँवारने को कुछ ज्यादा नही बचा। पहले बक्स थे, पलग था, लकड़ी की छोटी आलमारी थी, बिस्तरे थे, उसके और उसके आदमी के कपड़े थे, जूते और चप्पलें थी। अब कोई ऐसी चीज नही, जिसे सँवारने के लिए मेहनत की जाये। अलगनी और

है। तुम उसको बुलाकर ला दो, ढाबे पर जो वो लम्बा-सा मिस्मर काम करता है। छोड़कर तो मैं वैसे ही चली जाती, तुम्हारे हाथ ताली भिजवा देती। मन में लालच भरा है। मकान की ऐवज में कुछ रुपये मिल जायें। कहीं जाऊँगी तो खाने-पीने का ठौर-ठिकाना हो जायेगा। नहीं देगा तो यहीं पड़ी सड़ती रहूँगी।' रुककर कहा, 'रज्जन के जनम का तुम्हारा भी कर्ज सिर पर चढ़ा है। उसे भी चुकाना है।'

'अरी मेरा इनाम तो उसी दिन मिल गया जिस दिन तूने बेटा जना। बेटा-बेटी जनवाकर हम भी कुछ देर के लिए फिर से अपने को माँ समझने लगे हैं। कभी बेटे की माँ और कभी बेटी की माँ। तूने तो मुझे बुढ़ापे में बेटे की माँ बनाया है। तेरे बेटे ने मेरी एक बीसी ऊपर पाँच की गिनती पूरी कर दी।'

'मुझे तो देना ही है। यहाँ नहीं दूँगी तो वहाँ देना पड़ेगा।'

दाई उठी और बोली, 'अच्छा चलूँ⋯आज खाने को है ?'

नीमा चुप हो गई।

'तो मैं पडचूनिये के यहाँ से आटा, नमक, दाल ला देती हूँ, पैसे फिर चले जायेंगे।'

'नहीं।' रुककर कहा, 'पैसा कहाँ से चुकाया जायेगा। अब तो दो-चार बर्तन और कपड़े रह गये हैं।'

'मैं लाये देती हूँ।'

नीमा ने हाथ पकड़ लिया, 'नहीं...।' वह आगे कुछ कह नहीं पाई। थोड़ी देर हाथ पकड़े रखा। फिर बोली, 'अब उधार नहीं मँगाऊँगी। दो रोटी रखी है वे ही खा लूँगी। ना हुआ तो फूल की एक थाली बिकवा दूँगी। थाली भी रोटी से ही भली लगती है। घर में खाली थाली रखी क्या अच्छी लगेगी।'

दाई जाने लगी तो नीमा ने फिर कहा, 'ढाबेवाले मिस्मर से जरूर कह देना चाची। अब तो उसी पर आस है।'

दाई चली गई तो नीमा रसोई में बर्तन सँवारने लगी। फूल के बर्तनों में थाली और दो लोटे बचे थे। बाकी पीतल के बर्तन थे। कलसा और पानी का एक छोटा गर्मा वह पहले ही बिकवा चुकी थी।

उसका ग्रादमी कहा करता था दुकान पर इतने बर्तन हैं कि पचास ग्रादमियों को एक साथ खाना खिला दे। ज्यादातर वह फूल के बर्तन खरीदता था। उसका कहना था फूल के बर्तन फूट में बिक जाते हैं ग्रौर ग्रच्छे दाम दिला देते हैं। ग्रगर कभी ढाबा बन्द भी होने की नौबत ग्रा जाय तो बर्तन बेच-बेचकर ही खाना-पीना चलता रहेगा। हालांकि बहुत कम बोलता था। लेकिन कभी जब नीमा ग्रौर ग्रपनी उम्र का फर्क सामने ग्राता था तो वह उत्तेजित होकर बातें करने लगता था।

नीमा ने कुछ बर्तनों को ग्रलग छाँट लिया। उन्हें बेचा जा सकता था। फूल का लोटा, छोटी थाली ग्रौर बटलोई वगैरह रोक ली। कुछ पीतल के बर्तन रह गये। जब खाने का सामान होगा तो बनाने के लिए भी बर्तन चाहियेंगे। उसका ग्रादमी बर्तन बेचने की बातें ही किया करता था। नीमा के सामने वह मौका कई महीने से था। वह बहुत कंजूसी के साथ बर्तन बेचती रही थी। नीमा के ग्रादमी को कई बार लगता था कि जब वह बूढा हो जायेगा तो ढाबा बन्द कर देना पड़ेगा। नीमा का मन कई बार हुग्रा कि वह कह दे कि तब तक उसकी उम्र भी काफी हो जायेगी। जरूरत पड़ेगी तो वह जाकर ढाबा देखा करेगी। रोटी सेक-सेककर गाहकों को भी खिला लेगी। लेकिन ये सब तो उस वक्त की बातें थीं जब उसका ग्रादमी जिन्दा रहता ग्रौर दुकान हाथ से ना गई होती। ग्रब तो सवाल ही नहीं उठता। ना वो ही रहा ग्रौर ना दुकान ही रही। सुना है उसके भतीजे ने फूल के बर्तन बेचकर दुकान पर चीनी के बर्तन रख दिये है। बड़े लोग उन बर्तनों में खाना बुरा समझते है। चीनी के बर्तनों की ना जात होती है ना बिरादरी। धोये ग्रौर रख दिये। उसका ग्रादमी चाहे जितना भी लाचार हो गया होता ऐसा कभी न होने देता। बड़ी सुचवाला ग्रादमी था।

रसोई के बाद उसने कमरे में पड़ी चीजें सँवारनी चाही। रज्जन सोया हुग्रा था। उसे लगा ग्रब वहाँ सँवारने को कुछ ज्यादा नहीं बचा। पहले बक्स थे, पलंग था, लकड़ी की छोटी ग्रालमारी थी, बिस्तरे थे, उसके ग्रौर उसके ग्रादमी के कपड़े थे, जूते ग्रौर चप्पलें थीं। ग्रब कोई ऐसी चीज नहीं, जिसे सँवारने के लिए मेहनत की जाये। ग्रलगनी ग्रौर

खूँटियाँ सभी खाली हो गई हैं। कहने को आदमी अकेला जाता है पर सब कुछ साथ लेता जाता है। उसने झाड़ू लगानी शुरू की। धूल ही धूल उठती रही। जैसे सड़क बुहार रही हो। एक क्षण को हाथ रुका भी। कहीं रहे-सहे को भी झाड़ ना लग जाय! बचा ही क्या है? लग भी जायेगी तो लग जाय। वह झाड़ लगाती रही। उसका बेटा बचा रहे, उसे और कुछ नहीं चाहिए। वक्त की बहुत ही मार हुई तो वह अपने बेटे को लेकर जमना में उतर जायेगी। अपने आप चला गया। इसको उसकी जान से लगा गया। मरने लायक छोड़ा ना जीने लायक। कहाँ जाये? क्या करे? अपने ही हाथों अपनी नसें काटकर अपना खून भी तो नहीं बहाया जाता।

उसके पास अभी उसका एक गर्म कोट था और एक गर्म जाकेट थी। वह उन्हें बेच सकती थी। अपने आदमी की इन दोनों चीजों को बेचने के लिए उसका मन नहीं ठुकता था। उसकी ना कोई तस्वीर थी और ना कोई और निशानी। निशानी के नाम पर रज्जन को ही कहा जा सकता था। एक जोड़ी जूता भी था जिसे वह दरवाजे तक पहनता हुआ चला जाता था। कई बार नाराजगी की रात गुजरने पर अगली सुबह वह उन्हीं जूतों को पहनकर जलेबी लेने गया था। जलेबी लाकर वह खुद ही दूध में भिगाता था। कटोरे में लाकर उसे देता था। वह सिर्फ़ बैठी-बैठी देखा करती थी। उसने अपने आदमी को कम परेशान नहीं किया। यही समझकर कि, वह ज्यादा उम्र का है जो कहेगी वह करेगा। हालाँकि उम्र का ऐसा खास फर्क कभी मालूम नहीं दिया। यहाँ तक कि उसने मरते-मरते भी उसकी बात रखी। दरअसल वह उसे समझ नहीं सकी। तब उसे जल्दी थी, कुछ कर नहीं सकी। अब वक्त नदी में फेंकी कंकर की तरह कहीं का कहीं निकल गया।

वह उसके कपड़े और जूते नहीं बेचेगी। बड़े होने पर रज्जन को दिखायेगी। उसके कोट में एक कलम भी लगा है। उसी कलम से दुकान और खर्चे का हिसाब हिन्दी-मुन्डी में लिखा करता था। उस कलम को भी रज्जन के लिए सँभालकर रख लेगी। इन्हीं चीजों के जरिये वह अपने बाप को जान पायेगा। वह एक तरह से निश्चिन्त होती जा रही थी।

जा रहे है। आँगन मे आनेवाली उनकी चमक मद्धम पड़ती जा रही है। उसकी तबीयत और घबराने लगी। शाम हो जायेगी, फिर अँधेरा होगा और फिर रात। उसके और रज्जन के चारों तरफ़ वह रात इसाइयो वाले मुर्दा-बक्से की तरह घिर जायेगी। पता नही वह इस बक्से कब और कैसे छूटेगी ?

नीमा को भूख लगने लगी थी। उसका बेटा भी भूखा था। उसने अपने मुँह मे तुलसी-दल रखकर ऊपर से पानी की धार डाल ली। उसे अपना दूध चुँगाना चाहा तो रज्जन दूध न होने की वजह से चिढ़कर जोर-जोर से रोने लगा। उसकी छाती दुख आयी।

कमरे मे लौटी तो उसे लगा वह कमरे में दिन-भर बिना बात झाड़ लगाती रही है। और अब अँधेरा आ रहा है। सारे कमरे मे कालस ही बिछ जायेगी। उसे और रज्जन को उसी कालस-भरे अँधेरे में लिथड़ना पड़ेगा। वह कर ही क्या सकती है ?

जिस दिन दावेवाला आदमी आया, नीमा के पास जीने का कोई रास्ता नही बचा था। या तो वह घर छोड़कर चली जाय और नौकरी-चाकरी करके अपना और बच्चे का पेट पाले, या फिर जमना जल में उतर जाय।

वह आया तो हँसकर बोला, 'पंडतानी, तुमने तो पडत का बड़ा दुख मनाया। सूखकर लम्पट लग गये। ठीक है वो भला आदमी था। पर उसके पीछे जान देने से क्या फायदा। बच्चा भी सूख-सूखकर काँटा होता जा रहा है।

वह चुपचाप सुनती रही। वह बोलता जा रहा था, 'हमने तो पंडत की सेवा में अपनी जिन्दगी लगा दी। तुम्हारी भी उसी तरह सेवा करते पर तुमने तो हमे दुश्मन ही समझा। हमेशा दुतकारा ही। हम भी बाँभन ही थे। किसी मरी-गिरी जात के थोडा ही हैं। पंडत ने तो कभी भेद नही माना। पर तुम गैर समझती रही।'

नीमा ने बोलना चाहा। लेकिन वह कहता रहा, 'हमारे खानदान मे भी सिद्धी है। जितने मरद हुए हैं कोई अस्सी-नब्बे से कम नहीं गया।

सब अपने हाथों-पैरों चलते-फिरते गये। किसी ने खाट नहीं ओटी। जो जबान से कह दिया वो ही पत्थर की लकीर हो गया। बत्तीस दांत से एक कम नहीं होता चाहे गिन लो। इसीलिए दुसमन के लिए भी मुंह से बुरी भाखा निकालते डरते हैं। इधर मन मे बुरी बात आई उधर बुरा हुआ। पडत से हमने कह दिया था तू घर तो बसा रहा है पर ज्यादा दिन तेरे भाग मे गृहस्थी का सुख नहीं। जिस दिन पंडत मरे उस दिन हमारे मन में कलेस रहा। ऐसी बात मन मे आई क्यों ? पर सतोगुनी मन। हमारे मन मे सच्ची बात नहीं आयेगी तो किसके मन मे आयेगी।'

नीमा ने उसकी तरफ देखा। उसकी आंखें गुस्से से फैल गई थीं और होंठ पपड़ा गये थे। वह धीरे से बोली, 'तुमने उनका बुरा सोचकर बहुत बुरा किया।'

ढाबेवाला आदमी एक मिनट को सकपका गया। फिर सफाई देता हुआ बोला, 'नहीं मेरा ये मतलब थोड़े ही है ...।'

नीमा बीच ही मे बोली, 'तुम्हारे आगे ना पीछे...अकेली जिंदगी है। तुम क्या जानो यह बात कहकर तुमने कितना बुरा किया।'

वह तुरंत आंखें चमकाकर बोला, 'इसीलिए तो कहता हूँ, अपनी सेवा करने का मौक़ा दो। तुम्हारा बच्चा भी पल जायेगा। हम भी पंडत के रिन से उरिन हो जायेंगे। उसका खून है। तुम्हारा पहला आदमी तुम्हारे चक्कर मे घूम रहा है। उससे भी छुट्टी मिल जायेगी। भतीजे ने कब्जा कर लिया है उससे भी...।'

नीमा बार-बार होंठ चबा रही थी। लेकिन उसने अपने को संयत रखते हुए बीच ही में कहा, 'उस दिन तुम इस घर के बारे मे सदेसा लेकर आये थे। मैं भी यहां से चली जाना चाहती हूँ। कहीं काम करके इसका और अपना पेट भरूँगी। यहां रहते काम करने से पडत जी का नाम नीचा होगा।'

'पंडतानी, तुम्हें काम करने की जरूरत ही क्या है, काम करने को तो मैं हूँ। तुम राज करो। पंडत का भतीजा मेरे बिना थोडे ही होटल चला लेगा। तुम जाओगी तो पंडत की आत्मा दुखी होगी। उसकी आत्मा का वास तो यहीं है। तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारी और इस

बच्चे की सारी जिम्मेदारी उठाता हूँ। पंडत का भतीजा तो ससुरा बेवकूफ है।'

नीमा का गुस्सा एकाएक व्यक्त हो गया, 'अपना परलोक क्यों बिगाड़ते हो पंडत। नियत ना बिसराओ। जिस काम के लिए तुम उस दिन आये थे उसी काम के लिए तुम्हें आज भी बुलाया है। पंडत जी का भतीजा घर चाहता है, मैं देने को तैयार हूँ। ऐवज मे रुपये दे दे तो रज्जन का इलाज-मालजा करा लूंगी।'

वह अंतिम वाक्य तक पहुँचते-पहुँचते शान्त हो गई थी। होटलवाला आदमी पानी पड़े अंगारों की तरह ठंडा हो गया था। उन दोनों की चुप्पी में यह अन्दाज लगाना मुश्किल था कि कौन क्या कहेगा।

नीमा ही बोली, 'अब जिन्दगी में किस्मत के ज्यादा खेल नहीं देखना चाहती। बस मुझे तुम्हारी इतनी ही मदद चाहिए कि यहाँ से इज्जत से चली जाऊँ।'

उसके चेहरे से लग रहा था कि उसका चेहरा सिकुड़कर मूषक हो गया है। बार-बार दाहिनी तरफ की उसकी मूँछ काँपने लगती थी। नीमा उसका जवाब सुनने के लिए खामोश खड़ी थी। वह बोला नहीं तो नीमा ने ही पूछा, 'तो कुछ करोगे ?'

उसने सिर्फ गर्दन हिला दी और लौटने लगा।

नीमा को लगा वह उसकी बात से दुखी हो गया। नीमा ने धीरे से कहा, 'अगर कुछ ना हो सके तो बता जाओ जिससे मैं आस छोड़ दूँ। बरतन-भाड़े बेचकर जाने का कोई और इन्तजाम कर लूँ। चली तो मैं पहले ही जाती पर कर्जा लेकर नहीं जाना चाहती। उसे भी चुकाना है।'

वह रुककर खड़ा हो गया। कुछ देर खड़ा रहा, फिर बिना कहे चला गया। नीमा ने थाँवले से फिर एक तुलसी-दल उठाया और मुँह में रखकर धार बाँधकर गट-गट पानी डालती चली गई। लोटे का पानी खतम होने तक धार लगातार गिरती रही।

उस रोज, दिन बहुत धीरे-धीरे खिसका। रज्जन बीच-बीच में रो-रोकर दिन को ठहराता रहा और मुश्किल बनाता रहा।

ढाबेवाला आदमी काफी रात गये आया था। नीमा चौखट पर बैठी रज्जन को हिला-हिलाकर चुप करा रही थी। उसका रोना मिन-मिन करके निकल रहा था। आँगन मे आस-पास की रोशनियों का मिला-जुला प्रभाव था। इसलिए आँगन में कमरे की तरह कोलतार नही घुला था। उसने दरवाजा खटखटाया तो नीमा दरवाजे के पास जाकर ठिठक गई। दूसरी बार खटखटाया तो नीमा ने पूछा, 'कौन ?'

'होटल से आया हूँ।'

नीमा ने कुंडी खोलने के लिए हाथ बढ़ाया, थोड़ी देर उस पर रखा रहा। मन हुआ कह दे कि कल आना। लेकिन फिर कुंडी धीरे से खोल दी। रज्जन फिर रोने लगा।

नीमा दरवाजा खोलकर हटी नही, वहीं खड़ी रही।

वह बोला, 'पड्तानी, मैं रुपये लाया हूँ। पडत के भतीजे ने भेजे हैं।'

नीमा रास्ते से हट गई और अन्दर की ओर मुड़ गई। वह पीछे-पीछे अन्दर आ गया। आँगन में ही जो इधर-उधर की रोशनी थी, वहीं थी। बाकी सब जगह अँधेरा था।

'दिया-बत्ती नही की पडतानी ?'

नीमा ने जवाब नही दिया।

'लाओ मुझे दो मैं किये देता हूँ।'

'तेल खतम हो गया था।' नीमा ने बहुत धीमे से कहा।

नीमा ने अँधेरे में ही उसे देखना चाहा लेकिन उसकी शक्ल दिखलाई नहीं दी। रज्जन की मिन-मिन ही उस अँधेरे को खँगोलती रही।

ढाबेवाले आदमी ने अपनी फेंट से निकालकर रुपये गिने और उसकी तरफ बढ़ा दिये। देकर बोला, 'बडी मुश्किल से छः सौ रुपये देने पर राजी हुआ।'

'हजार की बात थी।' फिर चुप रहकर बोली, 'खैर। मैं कल-परसों तक चली जाऊँगी। बाहर के ताले की ये दूसरी ताली तुम रखना। जब मैं चली जाऊँ तो उसे दे देना।' उसने अपने पल्ले से ताली खोलकर देते हुए कहा। फिर बोली, 'भगवान ने जब वो सुख नही रहने दिया तो इस छत का सुख ही कौन बड़ा सुख है।'

वह खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद बोला, 'पंडतानी, आज मैं होटल से खाना बनवा कर लाया हूँ। खाओ तो खा लो। फिर तो तुम चली जाओगी। राम जाने भाग तुम्हें कहाँ ले जाये और हमें कहाँ ले जाये। हम भी अब छोड रहे है।'

वह बोली नही।

वह फिर बोला, 'इतने में तेल लेकर आता हूँ। इस बच्चे के लिए थोडा दूध भी बोतल में है।

वह लपकता हुआ बाहर चला गया। नीमा उसके लाये थैले के पास खड़ी रही। उसे वह थैला अँधेरे के बढते हुए ढूह की तरह लगता रहा। वह स्वय भी अँधेरे की एक छोटी और लम्बी मीनार का रूप धारण करती जा रही थी।

ढाबेवाले आदमी ने ही तेल लाकर लालटेन जलायी। थैले का ढूह फिर एक छोटे से थैले मे बदल गया। नीमा ने ढाबेवाले आदमी के चेहरे की तरफ देखकर अन्दाज़ लगाया। उसका वह चेहरा अब उतना बड़ा नही रहा जितना उसे हमेशा लगता था।

नीमा ने कहना चाहा कि वह खाना ले जाये। पर कह नहीं पायी। वह यह कहता हुआ चला गया, 'होटल मे काम है, पंडत के भतीजे ने फौरन बुलाया था।'

उसके चले जाने के बाद भी थैला उसी तरह आँगन के बीच धरा रहा। नीमा को उस थैले में से परिचित-सी गंध आती मालूम पडती रही। लेकिन उसे फिर लगा, उसका लाया हुआ खाना नही खाना चाहिए। उसकी नीयत ''' लेकिन आज बदली हुई थी। वह सिर्फ ढाबे से आने वाला एक आदमी मात्र था। एकाएक नीमा को ध्यान आया कि उसका आदमी कहा करता था, 'रोटी अपने चाहे नही मिलती!'

लालटेन की रोशनी कई दिन बाद देखी थी। उसे लग रहा था कि रोशनी बहुत दिन बाद घर आने के कारण घर लौटे बच्चे की तरह हर कोने मे घुसने की कोशिश कर रही है। कई जगहो पर अपरिचितो की तरह अँधेरा जमा खड़ा है। लालटेन की रोशनी पास तक जाकर इधर ही ठिठक जाती है। उसे लगा वह लालटेन को हाथ मे लेकर दूसरी तरफ

फँदा दे। लेकिन वह रोशनी फिर इधर आने से मजबूर हो जायेगी। जहाँ-जहाँ रोशनी पहुँच गई थी, वहाँ-वहाँ उसे वे सब चीजें नजर आ रही थीं जो अब वहाँ नही थी। उन सब की खाली जगहें बार-बार चीजों मे बदल जाती थी और फिर खाली हो जाती थीं। यहाँ तक कि उसके आदमी के पलंग की जगह ......।

नीमा ने आँखें बन्द कर ली। कुछ देर बाद खोली। उसके पति का पलग धीरे-धीरे हिल रहा था और रोशनी इसी बीच अधिक घुल गई थी। नीमा ने लालटेन फिर उसी खोह में रख दी जिसमे वह खुद चली जाया करती थी। लालटेन दो हिस्सो में बँट गई। एक तरफ रोशनी और दूसरी तरफ़ उसका असर। वह असर वाले क्षेत्र में रह गई थी। एकदम दूसरे पाले मे थी।

थैले से बोतल निकालकर पहले उसने रज्जन को दूध पिलाना चाहा। उसने थोडा-सा पिया बाकी छोड़ दिया। ऊपर का दूध उसे भा नही रहा था। बचा हुआ दूध उठाकर उसने सवेरे की चाय के लिए रख दिया। रज्जन का थोडा-थोड़ा पेट भरा तो वह निन्दियाने लगा। नीमा ने उसे लिटा दिया और सुलाने लगी। जब तक वह सोया उसे एक प्रकार का भय सा लगता रहा। कई दिन बाद लालटेन के जलने के कारण घर मे एक परायापन व्याप्त हो गया था। अनुपस्थित वस्तुओं की उपस्थिति का अहसास लगातार बढता जा रहा था।

रज्जन के सो जाने के बाद वह लालटेन उठाकर रसोई में चली गई। रसोई की दीवारों के लेवडे गिर गये थे। एक जंगली खोह की तरह मार जालो से पुरी हुई थी। उसने बर्तन उल्टे-पलटे तो उसे लगा वह बहुत दिनो के बाद कहीं से लौटी है। वह थाली लेकर मुडी तो उसे उस रोज वाली परसी हुई थाली रसोई के बीचो-बीच रखी दिखलाई पडी। अपने आदमी के हजार समझाने पर भी उसने नहीं खाया था। अगले दिन तक वह थाली उसी तरह रखी रही थी। उसका अहसास अभी तक मौजूद है। उसके बाद फिर मौका ही नही आया। ना तो साथ खाने का और ना कहने का। वह समझाता ही चला गया—रोटी से क्या दुश्मनी!

नही पडी। उसी ने दाई से कहा होगा। हो सकता है कुछ लिया-दिया हो। पर दाई ऐसी नही है। उस दिन के बाद दाई ने जिक्र नही दिया। कई बार आ चुकी है। उसी के सहारे जिन्दगी चल रही है। वही बेचारी बेच-खोचकर पेट के जाले फडवा देती है।

उसने टुकड़ा तोड़कर मुंह मे रखा तो उसे अच्छा लगा। बहुत धीरे-धीरे मुँह चलाने का प्रयत्न किया। जब उसका आदमी खाना लाता था तो उसे तब भी इतना ही सवाद लगता था। हो सकता है यही ढाबेवाला आदमी तब भी बनाता हो। वह उसी रफ्तार से धीरे-धीरे खाती रही। इस बीच उसने कई बार तुलसी दल रखकर एक-एक लोटा पानी धार बांधकर गले में उँडेला था। पेट में आँतें कुछ देर तक कुचर-कुचर करती थीं, फिर निराश होकर शात हो जाती थी। रज्जन जब परेशान करता था तो उसे लगता था कि उसके हाथ-पैर मारे गये है, अब वह कुछ भी करने के लायक नही रही। रज्जन भी कही इसी तरह रोता-रोता ना टूल जाय। लेकिन तुलसी के पत्ते ने उसे जिलाये रखा। नीमा ने खाते-खाते दोनो हाथ ऊपर उठाकर जोड़ दिये और फिर खाने लगी।

उसका पेट भरता जा रहा था। खाते-खाते ही उसे नीद आने लगी थी। बहुत दिनों बाद उसे 'खाना' मिला था। वह रुच-रुचकर खा रही थी। लेकिन वह ज्यादा नही खाना चाहती थी। अगले एक-दो दिनो के लिए भी बचाकर रख देना चाहती थी, नही तो उसे इन छ. सौ रुपये की गाँठ खोलनी पड़ती। अगले दिनो में उन्ही रुपयो से दोनो का खर्च चलाना है। फिर भी वह एक-आध पराठा ज्यादा खा गई। पेट भरने मे पेट में बेचैनी मालूम होने लगी। बचा हुआ खाना उन्ही दोनो मे बाँधकर थैले समेत एक टूटे से बक्से मे रख दिया। कभी-कभी बिल्ली भी आ जाती थी। हालाँकि अब आना बहुत कम हो गया था। चूहे भी जगह छोड गये थे। उन दिनो जब चूहे बहुत थे और वह उनकी शिकायत अपने आदमी से करती थी तो वह हँस देता था। भगवान के घर मे ही चूहे और बिल्ली होते हैं। जहाँ कुछ मिलेगा वही तो आस लगायेगे। उसके मरने के बाद भी कुछ दिन दिखाई दिये। फिर उनका पता ही नही

चला कहाँ चले गये। एक-ग्राध वार एक-ग्राध चूहे इधर-उधर लुढके हुए दिखाई पड़े। उन्हे उठाकर उसने बाहर फेंक दिया।

खाना खाने के बाद उसने कई दिनों बाद कुल्ला किया। पानी पीने के बाद तो कुल्ला होता नहीं। इसलिए उसे लगा कई दिनो की इकट्ठी बदबू उसके मुँह से कुल्ले के साथ निकल गई।

लेटने से पहले उसने लालटेन पहले दिनो की तरह ही कम कर दी। फिर उसे ध्यान *ग्राया, हो सकता है एक-ग्राध दिन ग्रौर रुकना पड़े।* इतने दिनों तक तो निपट ग्रँधेरे मे रहे थे। सही-शाम से ग्राधी रात के ग्रँधेरे मे डूब जाते थे। रोशनी के नाम पर ग्रासमान के तारों को ग्रौर सड़क से ग्राने वाली रोशनी के ग्रसर को देहली पर बैठकर देखा करती थी। उसने उठकर लालटेन बुझा दी। बाहर की रोशनियो के कारण ग्राँगन मे ग्रानेवाला प्रभाव ग्रौर ग्रासमान के तारे उभर ग्राये। बाकी सब निपट ग्रँधेरे मे बदल गया। दीवारें, खिड़की, टूटा बक्सा, सोता हुग्रा रज्जन ग्रौर लालटेन ये सब सट् से गायब हो गये। उसने रज्जन को नजदीक खसका लिया। इस ग्रँधेरे में उसे ग्रपना ग्रापा ग्रौर रज्जन इन्ही दो की उपस्थिति महसूस हुई। फिर वह सो गई। सोने के बाद वह रात-भर नही उठ सकी। काफी दिनो बाद पहली बार उसे पेट भरे की नीद ग्राई थी।

सवेरे वह खुश थी। रज्जन का पेट भी भर गया था। उसके लिए भी खाने का सामान घर मे था। वैसे भी वह रुपया-धेली खाने पर खर्च कर देने की स्थिति में थी। ढाबेवाले ग्रादमी का उसे दो-तीन बार ध्यान ग्रा चुका था। हालाँकि वह कोई बहुत ग्रच्छा ग्रादमी नही था। फिर भी वह रात खाना दे गया था, लालटेन के लिए तेल खरीद-कर लालटेन तक जला गया था। सदा की तरह बकवास नही की थी। खाने के साथ पैसा भी दिया जिसने उसे ग्रागे ग्रानेवाले कई दिनों के लिए निफराम कर दिया था। हालाँकि उसके ग्रादमी का भतीजा कह-कर मुकर गया था। फिर भी इतना रुपया उसके काफ़ी दिन निकाल देगा। इस बीच वह काम ढूंढ लेगी। शुरू में वह मुश्क तनख्वाह नहीं लेगी।

मय रोटी के नौकरी करेगी। चाहे सूखी रोटी और दाल ही मिले। पेट भी भरेगा और दूध भी बनेगा। सूखा नल किस काम का! बच्चा पल जायेगा। सिर्फ इतनी-सी हिचक है कि कभी किसी के यहाँ काम नहीं किया। दूसरे घर जाकर आदमी बिना हाथ-पैरों का हो जाता है। मुहताज होना पड़ता है और हर बात के लिए दूसरों का मुँह देखना पड़ता है।

लेकिन वह घर छोड़कर जायेगी कहाँ? दूसरा कौन-सा ठौर है जहाँ पैर टिका सकती है? दाई आई तो वह उससे भी सलाह करेगी। नहीं तो पुल के पार स्कूल वाली बहिनजी रहती है। उन दिनों भी उन्होंने ही मदद की थी जब रात-दिन वह उसे धुना करता था। वे स्कूल से अपने घर ले गई थी। अगर ना ले गई होतीं तो उसके पास जमना में कूदकर प्राण देने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह गया था। उनका स्कूल वहीं सामने था। पिटते-पिटते जब हद हो जाती थी तो वह भागकर स्कूल में घुस जाती थी और बहिनजी के पास जा बैठती थी। तमाशा बन जाता था। उसे शर्म भी आती थी। पर आदमी शर्म के सामने शरीर को बचाता है। बेचारी बिटिया रोती रहती थी। तुतला-तुतलाकर कहती जाती थी—मेरी माँ को ना मारो। नीमा ने हल्के-से आँख मल ली। पता नहीं बिटिया भी उसे पहचानेगी या नहीं? पता नहीं उसके बाप ने उसे क्या पट्टी पढ़ाई हो। ज्यादा बोलती थी तो एक-आध हाथ उसके भी धर देता था। बेचारी की जान ही कितनी बड़ी थी। बिल-बिला जाती थी। छोटी-सी देह ऐंठ जाती थी। बिटिया के मारे ही वह बहुत दिन तक उलझी रही। आखिर मजबूर होकर ही नाता तोड़ना पड़ा।

पहली-पहली बार जब बहिनजी घर ले गई थी तो वह उनसे लड़ने पहुँचा था। मुकदमा कर दूँगा। जेल भिजवा दूँगा। मेरी घरवाली को बहकाती है। मेरा घर उजाड़ना चाहती है। उन्होंने थाने पर कहला दिया था। दरोगा को आते देखा तो वह जूते छोड़कर भागा था। उसे रोते-रोते भी हँसी आ गई थी। हालाँकि पुलिस को बुलवाना उसे अन्दर ही अन्दर बुरा लगा था। लेकिन बहिन जी उसे पकड़वाना नहीं चाहती

थीं। सिर्फ डरा रही थी।

उसने रुपयों को निकालकर एक बार फिर गिना। कुछ नोट मैले लगे। उन्हे नीमा ने खर्चे के लिए अलग कर लिया। कम दिए थे, कम से कम साफ तो देता। खैर ! उन्ही से उधार वालों को निवटायेगी। पूत का और नोटों का मैला कौन देखता है। पर दुनिया का तरीका है, मैले नोट साहुकार को, गोरे नोट बाजार को। उन्ही में से उसने दाई को देने की भी सोची। उसी ने उसका साथ दिया था। कुछ अब दे देगी, कुछ बाद में। वह बेचारी कुछ नहीं कहेगी। उन नोटों को अलग-अलग दो पोटलियों में बाँधकर निश्चित हो गई। रज्जन को पेट पर लिटा लिया और उसे सुलाने के लिए धीरे-धीरे लोरी गाने लगी। गाते-गाते नीमा को नींद आ गई। दिन मे वह काफ़ी दिनों बाद सोई थी।

जब उठी तो दोपहर ढल रही थी। धूप अटारियों पर से उतारी जा चुकी थी। शाम फैल रही थी। दिन भी हो गया था। दाई नही आई थी। उसे घर छोड़कर जाना था। नीमा उदास होने लगी। रुपयों की दोनों गड्डियों को फिर सँभाला। बक्से में रखने लगी तो खाने की चीजों की गन्ध उसके ऊपर हावी हो गई। लेकिन उसका मन खाने का नही हुआ। रात पर टाल दिया। रज्जन गुलमुण्डी लगाये सो रहा था।

वह आँगन मे आ गई। तुलसी के बिरवे के बारे मे सोचने लगी। उसका क्या होगा ? उसे लेकर वह कहाँ जायेगी ? उसके मन मे आखिरी बार दिया जलाने की बात आई, लेकिन घी ?

वह दरवाज़े पर खड़ी हो गई। कोई बच्चा-वच्चा निकलेगा तो वह पैसे-दो पैसे का घी एक दीवले मे मँगा लेगी। जाने से पहले तुलसी माता के सामने दिया तो जला देना चाहिए। इन्ही की कृपा से बुरे दिन कट गये। अगर तुलसी जी ना होती तो वह भूखी मर गई होती। उन्ही की कृपा थी जो भूख की मार से भी वह और उसका बच्चा बचे रह गये। तुलसी-दल पेट में पहुँचते ही उबल-उबलकर मुँह को आती भूख को ठण्डा कर देता था।

एक बच्चा नजर आया। उसने उसे पास बुलाकर दो पैसे और दीवला देकर घी लाने को कहा। वह उसके देखते-देखते दौड़ गया। वह

बहुत देर तक खड़ी उसके लौटने का इन्तज़ार करती रही लेकिन बच्चे का कहीं पता नहीं चला। नीमा रोने-रोने को हो गई। तुलसी के बिरवे के सामने उसने कई बार हाथ जोड़े।

उसकी मंजरी उसने अपने पल्ले में बाँध ली और फफक-फफककर रो पड़ी।

उस समय अँधेरा ही अँधेरा था। झाड़ू देने वाले मेहतर तक नहीं आये थे। दिन के उभरने का कोई एहसास नहीं था। नीमा ने कपड़ों और बर्तनों के सिवाय सब कुछ वहीं छोड़ दिया था। वह पोटलियों को कंधे पर लटकाये और एक हाथ में रज्जन को सँभाले उसी नेड़ी गली में निकल आई थी और लपकी हुई चली जा रही थी। नेड़ी होने के साथ-साथ वह बहुत गहरी गली थी।

चलने से पहले जब उसने कौले खींचे थे तो उसे अपने आदमी के साथ बिताये खुशहाली के दिन याद हो आये थे। उसने ड्योढ़ी पर माथा टेककर अपने आदमी की आत्मा से चुपचाप माफी माँगी थी। वह बिसुरती हुई और अपने को सँभालती हुई चुपचाप बाहर निकल आयी थी। तब उसे पहली बार लगा था कि सब कुछ बिस्मार हो गया है। सामने कभी ना खत्म होने वाला एक मैदान पड़ा है।

दिन निकलने की शुरुआत होने से पहले बस एक मेहतर मिला था जो बुहार शुरू करने की तैयारी में था।

३

नीमा साल-भर नौकरी कर लेने के बाद इस बात के लिए आश्वस्त हो गई थी कि अब खुशहाली नहीं लौटेगी। रोटी के बारे में उसका आदमी कहा करता था, अपने चाहे नहीं मिलती। खुशहाली के बारे में भी नीमा यही सोचने लगी थी। स्कूल वाली बहिनजी ने उसको और उसके बेटे को रख ज़रूर लिया था लेकिन इतना ही किया था कि उन दोनों का

पेट भरता रहे। उसके अलावा दस रुपये भी देती थी। जिसमें से वह अपने पान-तम्बाकू और दिया-बत्ती का खर्चा चलाती थी। कई बार जब वह खाली बैठी होती थी तो पान खाकर दीवार पर थूकती रहती थी। दीवार पर पान की पीक से शक्लें ही शक्लें बनती जाती थीं। कभी लँगड़ा घोड़ा बन जाता था, कभी हाथी। लेकिन उसकी सूँड बहती-बहती इतनी चली जाती थी कि वह धागे का गोला मात्र रह जाता था। रिक्शा वाला बन जाता था। रिक्शा के पहिये भी बह जाते थे तो उसे हँसी आने लगती थी। कभी-कभी उसे लगने लगता, कोई बैठा रोटी खा रहा है लेकिन उसके सामने परसी रोटी बहने लगती और धीरे-धीरे खाने वाला आदमी भी बहकर बिगड़ जाता था।

रज्जन खेलने लायक हो गया था। हगनी-मूतनी खुला पाजामा पहने या तो बैठा अपनी माँ को देखा करता था या अजीब-अजीब तरह की आवाजें निकालकर निरर्थकता बढ़ाता रहता था। रज्जन के बड़े हो जाने से नीमा की समस्या थोड़ी बढ़ गई थी। हर चीज माँगता था। जिद करता था। नीमा को हमेशा यह महसूस होता रहता था कि इस तरह की माँ के बच्चों के लिए जिद करना ठीक नहीं। बहिनजी कभी-कभी कुछ कह देती थीं तो वह ना चाहते हुए भी चुटा जाती थी। फिर अपने आपको घण्टों समझाती रहती थी कि वे ही अकेली उसके आड़े वक्त में काम आईं। उसे उनकी बात पर जब्त करना चाहिए। बुरा मानना उसकी नाक पर आ जाता था। आँखों से झाँकने लगता था। हल्के-हल्के डोरे उभर आते थे। उस समय भी वह यही सोचती रहती कि बुरा नहीं मानना चाहिए। मानती भी नहीं, फिर भी मान जाती। यह विरोधाभास उसे बिना बोले भी उजागर कर देता था। बहिनजी बिगड जाती थीं और बिगडकर कई बार कह जाती, 'तुम लोग किसी के नहीं, कोई चाहे तुम्हारे लिए कितना ही कर दे, पर वहीं के वही ...'

नीमा को लगता, तूफान आ गया। उसके तन और मन का एक-एक रेशा बिखेर दिया। तब वह उन सबको समेटती और संजोती। तब वह बर्दाश्त करना शुरू करती। उसका बर्दाश्त करना यही होता कि वह वहाँ से टल जाती या रज्जन को बहाना तलाश करके गाली देने लगती,

'अपने-आप तो चला गया पर इसे मेरी जान खाने को छोड़ गया। अकेली होती तो कहीं डूब मरती। इस कम्बख़्त के मारे ये पाप भोगने पड़ रहे हैं।

वहिनजी कभी तो सुनकर टाल जातीं और कभी फिर नाराज़ होने लगतीं, 'मैं तो तुझे बुलाने नहीं गई थी। जब तेरा पहला आदमी मार लगाता था तो भी तू ही मेरे पास भागकर आती थी और अब···अपने-आप ही अपने इस शहज़ादे को लेकर आई। मैंने सोचा चलो तुम्हारा बच्चा पल जाएगा। पर तू तो यह समझती है मैं तेरी नौकरानी हूँ और तू मेरी मालकिन। ना भई, मेरे वस का नहीं। तेरा साल-भर गुज़र गया। पैर टेकने को जगह हो गई। तू जहाँ जाना चाहे चली जा। मुझसे तेरी यह फिन-फिन हर समय बर्दाश्त नहीं होती।'

नीमा को वैसे भी लगने लगा था और उस समय तो बिल्कुल ही लगता था कि गुड़ के बाँध ज़्यादा दिन नहीं चलाये जा सकते। वहिनजी ऊबने लगी हैं। उसका बेटा उन्हें नहीं भाता। सीधे-सीधे जाने को ना कह-कर उसे और उसके बच्चे को ताँसती रहती है। यह ठीक है उन्होंने उसके लिए बहुत किया पर वो भी तो उनके यहाँ साल-भर रोटी पर पड़ी रही। गधे की तरह घर का पूरा काम किया। रात देखा ना दिन। सुबह देखी ना शाम।

पता नहीं उस दिन किस घड़ी वह यहाँ आ पहुँची! सहारा तकना इसीलिए बुरा होता है। कहीं और निकल जाती तो निकल ही जाती। पर रज्जन और सामान को लादे तबीयत घबरा गई थी। ढोते-ढोते प्राणों पर आ बनी थी। दो दिन उस धरमशाला में भी रहकर देख चुकी थी। वह मरदुआ पीछे लग गया था। कैसी शक्ल थी। डाकुओं वाली। रज्जन को खिलाने से बातचीत शुरू की और बोलते-बोलते ऐसे बोलने लगा पता नहीं वह उसका क्या लगता है। अकेली औरत आदमी लोगों को धन के खुले बक्से की तरह लगती है। वह उस दिन भाग ना ली होती तो पता नहीं क्या होता! वह बौरा गया था। आँखों में फितूर उतर आया था। उसका अंग-अंग उचक रहा था। धोती-वोती उठाकर ऐसी बेशर्मी से बैठता था कि पता नहीं उसके पास ऐसा क्या है जिससे

मैं पट जाऊँगी। बस एक बहिनजी का ही सहारा नज़र आया। बहिन जी ने आवभगत भी की। दो अच्छी बात भी कही—तेरा भाग बहुत ही माड़ा है…पर तू मेरे पास रह। जो बन सकेगा तेरे और तेरे बच्चे के लिए करूँगी। इसका मतलब यह तो नहीं कि उस अहसान के बदले वह उसके बच्चे को फूटी आँखों ना देखें। बिटिया तो अपने बाप के पास है। उसके पास तो यही एक बच्चा है। इसके लिए भी उसने क्या-क्या नहीं झेला। सब कुछ इसी को पाने में खो दिया। यही बचा है। इसको भी लेकर बहिनजी ने ताना दिया था। मरते-मरते आदमी से कहीं बच्चे होते हैं। मन तो हुआ था मुँह नोच लूँ। पर कहकर वे हँस दी थीं। बात हँसे पर हल्की हो जाती है और मुंह बनाकर कहो तो उठाये नहीं उठती। अगर वे हँसी ना होतीं तो उस दिन बिना ठने ना रहती। पता नहीं मुँह से क्या निकल जाता। काम अहसान करते हैं और बातें उन्हें खो देती हैं। अगर बातें ना हुई होतीं तो आदमी ज़िन्दगी-भर अहसान में दबा रहता। भगवान ने गरीब आदमियों को इन बातों के सहारे बचा लिया।

जब भी कहा, सुनी होती थी—नीमा की आँखों के सामने आगे, पीछे का सब घूम जाता था। सोच का ऐसा चक्कर शुरू होता था कि वह उस पर मक्खी की तरह चिपकी चक्कर काटती रहती थी। वह रोटी के लिए यह सब क्यों कर रही है? क्यों नहीं बंजारनों की तरह पेड़ में झूला बाँधकर रज्जन को उसमें डाल देती और अपने-आप टोकरी ढोती? लेकिन उसके खानदान में कभी किसी ने ऐसा नहीं किया। वैसे भी उसकी जात में औरतें ऐसा काम नहीं करती। पर अब तो जात और घर सबने उसे छोड़ दिया।

नीमा और बहिनजी की इतनी कहा-सुनी पहले कभी नहीं हुई थी। छोटी-सी बात थी। पर नीमा ने उस छोटी-सी बात पर ही अपने अन्दर का फोड़ा फोड़ दिया था। कितना कुछ निकला, बहिन जी भी दाँतों तले उँगली दबा गईं। नीमा रज्जन के लिए एक-दो खिलौने खरीद लाई थी। बहिन जी को बड़े चाव से दिखाया। बहिन जी का थोड़ा मुँह चढ़ गया। मुँह तिरछा करके कहा, 'अच्छे हैं!'

नीमा समझ तो उसी समय गई कि बात बढ़ने वाली है। चुपचाप रसोई में चली गई। खिलौने लाते समय वह बहुत उत्साहित थी। रास्ते-भर सोचती आई थी—खिलौने ले जाकर रज्जन को देगी तो वह खुश होगा। उसका हर समय रीं-रीं करना बन्द हो जायेगा। बैठा खेलता रहा करेगा। शुरू में जब बहिन जी बहुत प्रेम में थीं तो एक गुड़िया लाकर दी थी। एक तो वह खेलना ही नहीं जानता था, दूसरे टूट भी गई। जब से होश सँभाला तब से तो खिलौने देखे ही नहीं।

उसके कुछ देर बाद बहिन जी रसोई में आकर बोलीं, 'नीमा, तुम्हारा बेटा है। मुझे कहने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे आदमी को करने का ही अधिकार होता है, कहने का नहीं होता। फिर भी बिना कहे मन नहीं मानता। अभी से अगर उसके दिमाग़ इतने खराब करोगी कि ये शाहज़ादे चार-चार, पाँच-पाँच खिलौनों से खेलें तो आगे चलकर कैसे निभेगी? तब तो इसे चाँदी-सोने के खिलौने बनवाकर दिये जायेंगे। आदमी को चाहे पैर भँगवाने पड़ें पर चादर से बाहर नहीं निकलने चाहियें। हमें यह बुरा नहीं लगता कि तुम्हारा बच्चा खिलौनों से खेलता है पर सच्ची बात यह है, कि अगर पेट के जाले ना झड़ते हों तो खिलौने काटने को दौड़ते हैं। बड़े होकर इसको चीज़ों के लिए ज़िद करने की आदत पड़ जायेगी। नहीं मिलेगी तो चोरी-चकोरी करेगा।'

नीमा को और तो कुछ सूझा नहीं, खिलौने ले जाकर अँगीठी में झोंक दिये। बहिन जी गुस्से से उबल गईं। ज़ोर-ज़ोर से नाराज़ होने लगीं, 'जब पेट को टुकड़ा और तन को कपड़ा नहीं था तो पैर पकड़ती घूमती थी कि बहिन जी आपने मेरी इज़्ज़त बचा ली। नहीं तो पता नहीं क्या-क्या भोगना पड़ता। आपके टुकड़ों पर मेरा बेटा पल जायेगा। जब पेट में रोटी पड़ने लगी तो दिमाग़ आसमान पर पहुँच गये। गेहूँ की रोटियों को हज़म करने के लिए पेट भी फौलाद का चाहिये। मेरे कहे का इतना ज़हर कि उस बेचारे बच्चे के खिलौने आग में झोंक दिये। भाग ऐसा और दिमाग़ वैसा...'

कान पकड़कर बोली, 'मैंने बहुत ग़लती की जो तुझे उस आदमी से बचाकर दूसरे आदमी से ब्याह रचवाया। अब तुझे अपने घर में बेटी

बनाकर रखे हूँ। वो ही तेरी हड्डियाँ तोड़ता तो तू ठीक रहती। पर अपना ही मन नहीं मानता था। सब कहते भी थे, बहिन जी, आप इन दोनों के बीच क्यों पड़ती हैं, इन लोगों के यहाँ तो रोज का ही यह किस्सा है। इसी में खुश रहते हैं। उसी का नतीजा आज भोग रही हूँ।'

बहिनजी की किचकिची और बढ़ी तो कह गईं, हमेशा बराबर के लोगों में कहना-सुनना चाहिए, कमीनों के मुँह लगकर अपनी ही बेइज्जती होती है।'

नीमा उठ खड़ी हुई, 'जो कहा सो कहा, अब आगे मत कहिए। भाग ना फूटा होता तो आपके मुँह से ये शब्द थोड़े ही सुनती। मैं जा रही हूँ, अपना घर सँभालिये। आपने जितना अहसान किया उससे कई गुना कह लिया। अब नहीं सुन सकती। इतनी बड़ी दुनिया पड़ी है, कहीं जगह नहीं मिलेगी तो जमना की गोद में जा बैठूँगी। रोटी के बदले अपनी इज्जत का मटका अपने हाथों नहीं फूटने दूँगी।'

नीमा ने इतनी फुर्ती से अपना सामान समेटा कि बहिनजी देखती रह गईं। उन्हें शायद नीमा से यह उम्मीद नहीं थी। सामान बाँधकर और रज्जन को गोद में लेकर बोली, 'बहिनजी, 'सँभालिये अपना घर ···' उसका गला भर आया। लेकिन अपने को सँभालकर फौरन ही कहा, *'अगर यह कमबख्त ना हुआ होता तो यह दिन ना देखना पड़ता।* मरने दे रहा है ना जीने दे रहा है। रोटी तक को गले का काँटा बना दिया। इसका बाप कहता था, रोटी से दुश्मनी नहीं करनी चाहिए। मैं कहती हूँ रोटी ही मुझसे दुश्मनी निभा रही है···'

वह बोलती-बोलती चुप हो गई। उसे लगा अपने आदमी के बाद वह पहली बार इतना बोल रही है। रज्जन को गोद में लिये-लिये हाथ जोड़कर बोली, 'राम-राम बहिनजी···अब जा रही हूँ। कही-सुनी माफ···'

सामान उठाकर बाहर निकल गई। बहिनजी बोल नहीं पायीं। उसके जाते ही सिसकने लगीं।

नीमा चौराहे पर आकर रुकी। बहुत-सी मोटरें, रिक्शाएँ, बसें

तेज़ी से आ-जा रही थी। वह उन्हे देखती रही। जितना वह अन्दर की तरफ थी, उतना ही बाहर। वे सब बाहर की तरफ दौड रही थी। उसने अपने से निकलकर एक-आध बार समझना चाहा, वे कहाँ जा रही हैं ? पर वह दिशा-मूढ हो गई थी। सिर्फ रफ़्तार समझ में आकर रह गई। वे सब उसे बच्चे के खिलौनों की तरह एक गोलाई में मात्र दौड़ती हुई लगी। इसको यही अनुभव हुआ, ये केवल दौड़ रही हैं, आना-जाना कही नही। क्या वह भी उनके साथ उसी घेरे मे दौड़ने लगे ?

'लेकिन रोटी ?'

'रोटी अपनी मर्ज़ी से नही मिलती तो किसकी मर्ज़ी से मिलती है ?'

वह इन सवालों में खोना नही चाहती थी। सबसे पहले उसे कहीं पहुँचकर सामान रखना था। उसे फिर पहले वाली धर्मशाला का ध्यान आया। अब तक वहाँ वह आदमी थोड़े ही रखा होगा ! लेकिन धर्मशाला उसी इलाके मे है जहाँ उसका दूसरा आदमी रहता था। वह इस बीच उधर के किसी आदमी से मिली तक नहीं थी। मिलना भी नही चाहा था। सिवाय धर्मशाला के वह कोई और ठिकाना जानती भी नही थी। पता नही दाई जीती होगी या मर गई होगी ? अगर जीती हुई तो शायद कही काम दिला दे। हो सकता है वह फिर वही बात कहे··· तब की बात तब देखी जायेगी।

उसके पास उन रुपयों मे से कुछ अभी भी बचे हुए थे। हालाँकि वे रखे-रखे थोड़े पक गये थे। रंग उतना साफ नही रहा था। पर उनसे महीना-दो महीने कट सकते थे। समस्या तो रुपये ना रहने के बाद की थी।

वह उसी धर्मशाला की तरफ चल दी। चलते हुए उसे लगातार लगता रहा—बसें, आदमी, रिक्शा, ताँगे सब उसका रास्ता रोकने के लिए बार-बार सामने आ जाते है। वह एक बहुत बड़े चक्कर मे फँस गई है जिसे पार करने का मतलब जान पर खेलना होता जा रहा है। एक बार फिर उसे उसी आदमी का ध्यान आया। कहीं फिर ना मिल जाये। लेकिन अब हिम्मत बाँधकर ही काम चल सकता है। डर तो उनके लिए होता है जिनके करने वाले भी होते हैं।

'देखा जायेगा !' बुदबुदायी। फिर रञ्जन को सीने से लगा लिया।

'अगर अपना घर हुआ होता ?'

'होता कैसे ? चीज़ हो तो वक्त की मार सहने में आदमी हीला-हवाला कर जाता है। हुआ भी होता तो भी घर को तो बिकना ही था। वक्त भी उभारा देकर ही डुवाता है।'

एक पेड़ के नीचे रुककर उसने रज्जन को ज़मीन पर खड़ा किया और सामान रखकर सुस्ताने लगी।

धर्मशाला उसके पहले वाले घर से आधा मील पहले ही पड़ती थी। उस इलाके में जाते हुए ही उसके पैर मन-मन के हो रहे थे। जैसे धरती पकड़े ले रही हो। धर्मशाला के बारे में अपरिचितता उसके निकट आने के साथ-साथ ज्यादा-ज्यादा बढ़ती जा रही थी। वह आदमी धर्मशाला की निकटता के साथ-साथ साकार होता जा रहा था जो दो दिन तक उसके बेटे को खिलाता रहा था और फिर उसका सगा बनने के लिए उतावला हो उठा था। धर्मशाला में घुसते ही सबसे पहले उसने उसी आदमी को देखा। इतने दिनों में धर्मशाला और ज्यादा पुरानी और गंदी हो गई थी।

नीचे के खन में, जहाँ पहली बार वह आकर रही थी, कुछ अधिक गदगी थी। चूल्हों की काली ईंटें, फटे-पुराने चिथड़े बिखरे थे। वह ज़ीने पर चढ़ती चली गई। दूसरी मंज़िल पर ज़ीने के पास मुंशी जी का तख्त पड़ा था। उस समय वे सो रहे थे। उनकी नाक ज़ोर-ज़ोर से बज रही थी। पहले वह खड़ी रही। वे सोते रहे। रज्जन शोर मचाने लगा तो वह थोड़ा-सा दूर हट गई। उन्होंने करवट ली तो वेपर्दगी हो गई। नीमा दूसरी तरफ चली गई।

आदमी ज्यादा बेशहूर और लापरवाह होते है।

वह काफ़ी देर बरांडे में बनी रही। जब भी वह देखती कि उठे या नहीं, हिचककर मुँह फेर लेती। पूरा बराडा उसे वैसा ही लगता। रज्जन और तंग करने लगा तो वह नीचे उतर गई। उसके लिए दो-चार आने का कुछ चना-चबेना खरीद लिया। लौटी तो मुंशीजी आँखें मलते हुए मिले। उन्होंने कड़कती आवाज़ में पूछा, 'क्या है ?'

'एक कोठरी चाहिए ?'

'कहाँ से आई ?'

'यहीं से।'

'घर-बार नहीं क्या ? या कंगली हो ? नीचे बहुत पड़े हैं। इकन्नी रोज़ दो और अपना चूल्हा रख लो।'

नीमा को बुरा लगा।

'नहीं, यहाँ हमारा घर था। पच्छिम में तीसरे मोड़ पर। हमारे आदमी नही रहे तो उनके भतीजे ने दखल ले लिया।'

'क्या नाम था आदमी का ?'

'जमना बाज़ार में चौडगरे पर ही ढाबा था।'

'ओह, वो काले पंडित। तुम तो एक बार पहले भी आई थी। हमें याद है।

'हाँ, अब फिर वक्त ले आया।'

'तुम तो काले पंडित की दूसरी ब्याहता थी ना ••• या वो तुम्हारा दूसरा•••था।' मुंशी ने सोचकर याद करना चाहा।

नीमा चुप लगा गई। दूसरी तरफ गर्दन घुमा ली। वह अपने-आप ही बोला, 'ये बच्चा तुम्हारा है ? काले पंडित से ही ना ? पहली वार बहुत छोटा रहा होगा। तुम्हारी उमर ही क्या है ! इस बच्चे को अनाथालय में जमा कर दो। पीछे ही है। कहीं बैठ जाओ। पर हाँ, बाँभन हो। तुम्हें तो तुम्हारी जातवाले मार डालेंगे। वैसे ये काम हमारे यहाँ भी नही होता।'

'हमें एक कोठरी चाहिए थी।'

'ज्यादा दिन के लिए चाहिए तो सात रुपये महीना ! दो-चार दिन के लिए चाहिए तो रुपया-धेली जो चाहो दे देना। महीने का पेशगी लूँगा।'

उसने धीरे से कहा, 'अच्छा।' फिर बोली, 'ऐसा कमरा देना जहाँ मैं अकेली पडी रहूँ। ऐसे-वैसे आदमी ना आयें। पिछली बार•••'

वह हँस दिया, 'हाँ वो मेरा साला था। एक औरत को उड़ा ले गया। तुमसे ज्यादा चौकस और अच्छी थी। साल-भर होने को आया, मुझसे कहा करता था—जीजा कोई अच्छी औरत दिलवा दो। उसके

भाग से मिल ही गई। फिर हम जो हैं। चिन्ता-फिकर की कोई बात नहीं'''वो एक तो साला था, दूसरे बदमास !'''उसे कुछ कहा नहीं जाता था। औरों को तो नोह से दबाकर डीगर की तरह कुचर दूँ।

'कोठरी बता दो।' फिर बोली, 'हम बहुत डरती हैं। मुसीबत की मारी, छोटा बच्चा साथ। थोड़ी दया रखियेगा। तेल-बत्ती मिल जायेगा।'

'कुप्पी दे देंगे, तेल अपना डलवा लेना।'

नीमा चुप हो गई। मुंशीजी उसे ऊपर की मंजिल पर ले गये। दो छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं। एक की तरफ इशारा करके बोला, 'इसमें रहो।'

नीमा दूसरी तरफ देखने लगी तो मुंशी ने कहा, 'इसमें हमारा सामान है।'

'यहीं रहते हो?' उसके चेहरे पर थोड़ी परेशानी उभर आई।

'हम यहाँ क्यों रहेंगे? बाल-बच्चोंवाले आदमी हैं। धर्मशाला का सामान भरा है।' हँसकर कहा, 'कहो तो रहने लगें।'

नीमा ने नजर बचाकर देखा वह जिस बेपर्दगी के साथ सो रहा था उसी बेपर्दगी के साथ हँस रहा था। वह जमीन की तरफ़ देखने लगी।

मुंशी ने अपने-आप ही कहा, 'एक बात और है, तुम चाहो तो यह कमरा मुफ्त मिल जाय।' नीमा ने थोड़ी परेशानी के साथ देखा। वह कहता रहा, 'बीसक रुपये ऊपर से मिल जायेंगे। सबेरे बरामदों और कमरों में पोछा लगा दिया करो। पर तुम यह काम क्यों करोगी? अच्छा एक काम करो। खाना बना दिया करो। यहाँ जो मुसाफिर आते हैं उन्हें खाने की बहुत किल्लत है। बर्तन धर्मशाला से मिल जायेंगे। सामान हम ला देंगे। तुम्हें और तुम्हारे बच्चे को खाना मिल जाया करेगा। ऊपर से बीस-पच्चीसक रुपये की आमदनी हो जाया करेगी।'

नीमा चुप रही।

वह ज़ीने की तरफ जाता हुआ बोला, 'सोच लो। तुम्हारी भी गुज़र-बसर हो जायेगी, हमें भी दो पैसे मिल जायेंगे। और हाँ, जरूरत पड़े तो बराबर की कोठरी में एक जूट का गद्दा और दरी पड़ी है। डार

लेना।-कल तक सोच लेना। कल ही सामान जुटा देंगे।'

मुंशी उतर गया। उसका उतरना जीने से उल्टा ऊपर को आ-आकर छत पर फैलता गया। जब वह पूरी तरह उतर गया तब नीमा अपनी जगह से हिली। उसने रज्जन की तरफ देखा, वह जमीन पर बैठा दाने चुग-चुगकर खा रहा था। नीमा कोठरी में गई। चारों तरफ गंदगी ही गंदगी थी। वह झाड़ू ढूंढने लगी। दूसरी कोठरी में पड़े झाड़-झखाड में उसे एक टूटी हुई झाड़ू मिल गई। उसी से वह अपनी कोठरी झाड़ने मे लग गई।

झाड़ू देते हुए वह गर्द से बुरी तरह अट गई थी। उसने सारा कूड़ा इकट्ठा करके नीचे गली में फेंक दिया। एक बार सोचा, फटा हुआ गद्दा और दरी भी निकाल ले। लेकिन उसे डर लगा, किसी ना किसी बहाने कहीं वे उससे चिपक न जायें। उसने सिर्फ दरी निकालने की बात सोची। दरी काफी गंदी थी और जगह-जगह से फटी हुई थी। अकेले ही उसने दरी को पटक-पटककर झाड़ा। झाड़कर उसे लगा, वह आराम से लेट-बैठ सकेगी। फटी हुई दरी को कोठरी में विछाकर एक क्षण के लिए खुशहाली का अहसास हुआ। दरवाजा बन्द करके उसने उस पर एक लोट लगाई। उसे इतना खुलापन और अकेलापन पहली बार अनुभव हुआ। लेकिन नीमा को एकाएक मुंशी का ख्याल आया—अगर कभी वह आकर उसी तरह लेटा जैसे तख्त पर सो रहा था, तो वह क्या करेगी आदमियों के तरीकों को समझना बहुत मुश्किल होता है। वह सहम-सी गई और अपने-आपको ही डरी-डरी-सी लगने लगी।

नहा-धोकर उसने सबसे पहले अपने रुपये सँभाले। इस समय उसकी वही जमा उसे ढाढस बँधा रही थी। रह-रहकर एक तरह का सगापन महसूस हो रहा था। जब भी वह रुपये गिनती थी तो उसे लगता था, अगर वह ज्यादा हाथ रोककर खर्च करे तो और ज्यादा दिन आराम से काट सकती है। कम खर्च करने का इरादा उसका पहले से ज्यादा पक्का हो जाता था। वह उन्हे और ज्यादा सँभालकर और सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती थी। छोटी जमा की सुरक्षा का दायित्व अनुपात से अधिक बढ़ जाता है। नीमा शब्दों मे तो इस बात को नहीं

जान पायी थी लेकिन मन में समझने लगी थी। उसने उनमें से कुछ रुपयों को अपने पेटीकोट के नेफे में घुसा लिया था और बाकी कपड़े में लपेटकर रख दिये थे। यह इस बात की सुरक्षा थी कि अगर खो भी जायें तो पूरे एकसाथ ना खोयें। नहीं तो वह पूरी तरह से कंगाल हो जायेगी। फिर उसका कोई सहारा नहीं रहेगा।

रज्जन खेलता-खेलता दरी पर ही सोने लगा था। वह दबे पांव बाहर छत पर निकल आयी। वह तीसरी मंजिल की छत थी। उस छत ने सड़क पर चलने वाले सभी लोगों को नीचा और छोटा बना दिया था। जो मकान नीचे थे उन्हें देखकर लगता था वे गुब्बारों की तरह धर्मशाला के कंगूरों से बँधे नीचे लटक रहे हैं। उसने अपने घर को भी वहीं से समझना चाहा। लेकिन वह कहीं दूर छिपा हुआ था। वैसे भी उसके चारों ओर बड़ी-बड़ी अटारियां थीं। जिन पर रोज सवेरे धूप चादर की तरह फैलती थी और शाम को समेट ली जाती थी। उसका घर भी उन अटारियों के सहारे लटका था। यह सोचकर उसका मन सिकुड़ता-सा गया। फिर भी अगर उसका घर होता तो उसे धर्मशाला का इतना बेगानापन ना भोगना पड़ता। उस समय वह लालच में पड़ गई। अब इस मुंशी तक को यह कहने की हिम्मत पड़ गई—अगर कहो तो कोठरी में ही रहने लगूँ।

दिन ढलने लगा था। दिन का ढलना कुछ इस तरह हो रहा था कि नीमा के लिए और ढलते दिनों के मुकाबले यह ढलना कुछ नया बन गया था। वह अपने को किसी अजनबी टापू पर खड़ा महसूस कर रही थी। जहाँ ढलने की पूरी प्रक्रिया कुछ नये तरीके से घट रही थी। वह उसे ना ठीक तरह समझ पा रही थी और ना कहने की ही स्थिति में थी। आसमान भी उसे अपने काफ़ी नजदीक आया हुआ लग रहा था। दिन की चाँदनी जिस तरह मैली हो रही थी वह उसके लिए एक नई बात थी। तारे चिड़िया की बीट की तरह कहीं-कहीं पर उभर रहे थे।

उसे शाम के लिए खाने-पीने का इन्तजाम करने की एकाएक फ़िक्र होने लगी। सबसे पहले उसे रुपये का ध्यान आया। जितना रुपया है, उसे ही काफ़ी दिनों तक चलाना है। जितने ज्यादा से ज्यादा दिन चल जाय

उतना ही अच्छा। शाम के लिए भी उसने चना-चवेना ले आने की सोची। उसी रुपये में उसे पेट भरकर गुज़ारे गये दिनों की तादाद ज्यादा से ज्यादा करनी थी।

वह शाम का इन्तजाम करने के लिए नीचे उतरी। मुंशी जी अपने कागज़-पत्तर सँभाल रहे थे। उसे देखकर मुंशी ने पूछा, 'क्या नाम है तुम्हारा पंडताइन ?'

नीमा को पंडताइन कहना अच्छा नहीं लगा। ढाबेवाले आदमी का एकाएक ध्यान आ गया। उसकी नियत भी ज्यादा अच्छी नहीं थी। उसने पहले तो चुप लगा जाने की सोची, फिर बोली, 'नीमा।'

'नीमा।' दोहराकर वह हँसा, 'ये क्या नाम ? चम्पा, चमेली, कपूरी—कुछ अच्छा नाम रखतीं। ये अँग्रेज़ी नाम किसने रख दिया ! हो तो पूरी देसी।'

नीमा की नाक की टुस्सी पर हल्की-सी लाली उभर आई। लेकिन वह उसे पी गई। मुंशी ने पूछा, 'कहाँ जा रही हो ?'

'दिया-बत्ती का जोग करने ? और···' बीच ही में चुप हो गई।

'वो रखी लालटेन, उसे ले जाओ। अभी उसमें तेल है। जब खत्म हो जाये तो बता देना।' फिर रुककर पूछा, 'इन जात्रियों का खाना बनाओ तो कल जुगाड़ करें। आठ-दस आदमियों का खाना है। आज कह रहे थे—डेढ़ रुपया एक वक्त का एक आदमी देगा। वो रसोई है। उसी में बना दिया करना। एक छोटा-सा लौंडा रख दूँगा। बर्तन माँज-धो दिया करेगा। रोटी खिला दिया करेगा। तुम और तुम्हारा बिटवा भी यहीं रहेगा। तीन-चार आदमियों का खाना मुफ्त निकल आया करेगा।'

नीमा एक मिनट चुप रही। मुंशी फिर हँसकर बोला, 'रोटी-पानी का ठिकाना है ? ना हो तो मैं इन्तजाम करूँ ?'

नीमा का एक बार मन हुआ उसी से मँगा ले। लेकिन फिर सँभल गई। बोली, 'है !' फिर सोचकर कहा, 'एक ताला-कुंजी चाहिए।'

वह हँसकर बोला, 'क्या रखा है जो ताला-कुंजी मे रखेगी ! ताला लगायेगी तो लोग समझेंगे पैसेवाली है। ताला टूटेगा। बंद ताला बंद औरत बदनियती जगाते हैं।' फिर अपने-आप ही एक छोटा-सा ताला उठाकर

देते हुए कहा, 'ले, ताले का शौक है तो लगा ले । इसकी ताली खो गई थी । धर्मशाला में दो तालियोवाला ताला चाहिए । ये तू ले लें । लगा मजे से । पर कहाँ-कहाँ लगायेगी !'

नीमा का मन हुआ ताला लेने से मना कर दे । पर जरूरत के मारे ले लिया । लेकर वह ऊपर जाने लगी तो मुंशी ने फिर पूछा, 'तो कल के लिए रसोई का जुगाड करूँ ? बनायेगी रोटी ? बखत भी कट जायेगा और पेट को टुकड़ा भी मिल जायेगा । काम करना बुरा नही होता नीमी · नीमी है ना तेरा नाम ?'

अपना नाम लिया जाना उसे अच्छा नहीं लगा, और वह भी इस तरह । वह बोली, 'नही, नीमा है । पर नाम ना लिया करो ।'

'तो क्या कहूँ ?'

'रज्जन की माँ !'

'तेरे बेटे का नाम रज्जन है ?'

'तुम्हारे यहाँ कैसे नाम रखे जाते है···रज्जन···मज्जन !' वह फिर हँस दिया ।

वह चुप रही ।

'तेरा मन नही लग रहा रज्जन की माँ ?'

इस बार नीमा ने उसकी तरफ देखा । उसे लगा यह वही आदमी है जो पिछली बार धर्मशाला में मिला था । ऐसे आदमियो में वैसे भी ज्यादा अन्तर नही होता, सब एक-से होते है । फिर उसे अपने ऊपर ही ग्लानि होने लगी । औरतें भी अपने को मोतियों की लड़ी समझती है । देखा नहीं कि मोती झरा । उसे ऐसा नही बनना चाहिये । रखा ही क्या है ! पर ये मुंशी उसके आदमी को जानता है इसलिए पूछ रहा था, तुम उसकी दूसरी बीवी थी या वो तुम्हारा दूसरा आदमी था । शायद यह भी तीसरा बनने की उम्मीद में हो । बीच-बीच में तू-तडाक से बोलने लगता है ।

मुंशी बोला, 'अच्छा मैं जा रहा हूँ । घबराना नही ।' फिर रुपये निकालकर उसे देते हुए बोला, 'इसे रख लो, अब हमारा-तुम्हारा दूसरा ताल्लुक हो गया । मिल-जुलकर काम करना है । तुम्हारा बच्चा पल

जाये हम तो यही चाहते हैं। जो कहो वो हम कर दें। तुम हमारा ख्याल रखो, हम तुम्हारा रखें। एक हाथ दूसरे को सहलाता है। कल से खाना बनाने का धंधा न जोड़ना चाहो तो कल आराम कर लो। परसों से सही।' वह मुस्कराने लगा।

नीमा बिना रुपये लिये ज़ीना चढ़ने लगी तो वह नीचे ही खड़े-खड़े बोला, 'देखो भाई, मिल-जुलकर चलना है। उसी में तुम्हारा भी भला है और हमारा भी। मन मिला सो तन मिला, तन मिला सो धन मिला, धन मिला तो जहान मिला। हमने तो बड़ों से यही सीखा है, क्या नाम तुम्हारा'''हाँ, रज्जन की माँ। हमारा तो कौल दूसरे की सेवा करना ही है''कभी किसी से माँगा नहीं। जिसने जो दे दिया सिर आँखों पर। भगवान ने भी सुनी और जग ने भी सुनी। बदनियती को पास नहीं फटकने दिया। आज पता नहीं कैसे तुम्हारे सामने मुँह से निकल गया, कोठरी का किराया लगेगा'''। तुमसे हम एक पैसा नहीं लेंगे।'

वह बोली, 'नहीं, जो कहोगे दे दूँगी। बस हम इज्जत से रहना चाहती हैं। ना सिर पर छत रही, ना कोई बड़ा रहा। हम समझेंगे तुम ही बड़े हो।' कहकर नीमा ने तिरछी नजर से उसके चेहरे की तरफ देखा।

मुंशी हँस दिया, 'हम काहे के बड़े! तुम्हारे ही उमर के होंगे। साल-दो साल इधर या उधर। काम के मारे मूँड सफेद हो गया। तुम समझ रही होगी हम साठ साल के हैं। हमारी घरवाली कहती है तुम बहुत जोरदार हो।'

नीमा ऊपर ज़ीने पर चढ़ने लगी। उसके कदम तेज़ होते गये। वह कुछ ऐसे दौड़ने लगी, कि उसकी धोती का पल्ला मुंशी के हाथ में आ गया हो और वह नीचे की ओर खींच रहा हो। वह फिर बोला, 'अच्छा हम चले! मालिकों के द्वारे भी जाना है। रोज जाना पड़ता है। नौकरी सौ रुपल्ली की और हाजरी दुखता। इन्हीं सब बातों से तो आदमी बेईमानी करने लगता है। बेईमान कोई पैदा थोड़े ही होता है। ज्यादती बनाती है।'

वह चढ़ती चली गई। मुंशी नीचे खड़ा रहा। अपने-आप ही बुद-

बुदाया, 'ग्रभी परची नहीं !'

फिर नीचे उतर गया ।

ऊपर पहुँची तो रज्जन उठ गया था और रो रहा था । नीमा की ओर दौड़कर लुढकता-पुढकता बढ़ा । नीमा ने उसे गोदी में उठा लिया । उसका मन हुआ वह सब कुछ उसी को सुना दे । वही अकेला मरद बच्चा है जो उसकी रक्षा कर सकता है । वह सिर्फ इतना ही बोली, 'अरे रज्जन, जल्दी-जल्दी बड़ा हो जा बेटा ।' कसकर उसे सीने से लगा लिया ।

रज्जन चुप हो गया तो उसने बचा हुआ चबेना उसके सामने डाल दिया । वह टूंगने लगा ।

नीमा ने भी दो-चार दाने मुँह मे डाले तो वह रोने लगा । नीमा ने भूठ-मूठ को मुँह से निकालकर दाने उसके दानों में डाल दिये । वह चुप होकर फिर खाने लगा ।

नीमा काफ़ी डरी हुई थी । रज्जन को लेकर वह कहाँ जाये ? रात को अगर मुंशी किवाड़ खोलने के लिए कहने लगा तो वह क्या करेगी । सच पूछो तो दरवाज़ा बन्द करने का उसे कोई हक नही । पराये आदमी के लिए तो अपने ही घर का दरवाज़ा बन्द किया जा सकता है । इस कोठरी पर उसका क्या हक ! दूसरों की दया पर आ पड़ी है ।

रज्जन दाने टूंग रहा था । उसके इस तरह चुपचाप दाने टूंगने से वह भल्ला गई । उसकी वजह से ही उसकी जिन्दगी तंग हुई है । उसने आदमी को इसी के लिए कोसा था । वह मरता-मरता भी उरिन हो गया । इसे मेरी जान को लगा गया । अगर उसका पहला आदमी किसी काम का हुआ होता तो कभी ऐसी हालत ना आती । उसकी अपनी ही बिटिया क्या कम थी । कभी-कभी ऐसी भाखा निकलती है जो अपने ही लिए पाप बन जाती है । उसे पता नही क्यों लगता था अगर उसके पास उसकी अपनी बिटिया या कोई और बच्चा नही हुआ तो पता नही वो क्या कर डालेगी । इस भँड़ास मे वह सब कुछ कह जाती थी । उसने अपने आदमी के मन को भी उसी भँड़ास में डुबा दिया था । नही तो अच्छी-खासी छूट गई थी ।

पता नहीं वह दाई है या मर गई ?

दाई एक बार कह रही थी उसका पहले वाला आदमी उसे फिर बुलाना चाह रहा है। तब उसे काफ़ी भली-बुरी कही थी। लेकिन इन नीचों में मर्द ज्यादा बड़े दिल के होते होंगे। इसका बुलाना इसलिए समझ में नहीं आया था कि जब उसके साथ रहती थी तभी वह क्या कम हड्डे तोड़ता था। वह चली भी जाये तो भी क्या वह अपनी आदत से बाज़ आ जायेगा। अब तो मारने के लिए उसे दो मिल जायेंगे। रज्जन और वह ! जब गुस्सा आता था तो वह अपनी ही बिटिया को मारे बिना नही छोड़ता था। उसकी जगह रज्जन का बाप होता और रज्जन की जगह बिटिया होती तो वह उसे हरगिज़ इस तरह न सताता। वह इन्सानों में एक दूसरी तरह का इन्सान था। वह भगवान को ही प्यारा हो गया। अच्छे आदमियों की जितनी ज़रूरत यहाँ होती है उससे ज्यादा ज़रूरत उनकी वहाँ रहती है। हम जैसे कमबख्तों की उम्र बहुत लम्बी होती है। उनकी कही ज़रूरत नहीं होती। जहाँ जाते है वहीं ठुकराये जाते हैं। आज चली जाए तो रज्जन को छोड़कर कौन रोनेवाला है ! पर वह इतनी जल्दी नही जायेगी। भगवान ने सज़ा की जितनी उमर लिखकर भेजी है उसे पूरा-पूरा भोगेगी।

अभी दस-पाँच साल तो गिद्धों से बचना ही है। उन्हें तन चाहिए। तन दे भी दे पर उसके अन्दर आतमा जो कुलबुलाती रहती है। कुकुइया की तरह बाहर निकलकर बोलने लगती है। यह तूने क्या किया ? आदमी उसे ले जाकर कहाँ रोप दे। तन भी कोई घड़ा या हांड़ी तो है नहीं, चाहे जो उसमे भर लो और चाहे जब खाली कर दो। इससे तो पहले वाला ही अच्छा। तन भोगेगा पर आतमा तो बची रहेगी। अपनी बेटी भी मिल जायेगी। वह धरम का पति है। पर दूसरे आदमी की तो बात भी अन्दर ही अन्दर ज़हर घोलती रहेगी।

नीमा ने रज्जन को गोद में उठा लिया। छत पर आ गई। छत पर शाम का धुँधलका एक बड़े पक्षी के साये की तरह ठहर गया था। डूबते सूरज की लाली उसके घर की दिशा में तमतमा आई थी और सूरज डूब चुका था। वह इस बीच कभी जमना पार करके उधर नही आई थी।

शाम का धुंधलका और वह लाली कुछ अजीव तरह से एक बिन्दु पर आकर रुक गये थे। एक के हटते ही दूसरे को डूब जाना था।

पहले आदमी और बिटिया का ज़ोर उसे बीच-बीच में घसीट ले जाता था। कभी-कभी जब वह संतुलन बनाने की कोशिश करती थी तो *अधबीच में लटक जाती थी। उसके पास एक ही रास्ता बचा था अगर* दाई जिन्दा हो तो वह उससे जाकर मिल ले। दाई से बिटिया का भी पता चल सकता था और उसका भी। हो सकता है उसने दूसरा ब्याह रचा लिया हो।

एक बार वह पुल के पार तक आकर लौट गई थी। शहर मे घुसने का मन नहीं हुआ था। ढावे वाले मिस्सर, धर्मशाला वाला वो पहला आदमी, बिटिया और उसका बाप, उसका घर, उन सबने मिलकर उसे पीछे धकेल दिया था। वह वापिस बहिनजी के घर चली गई थी। उस दिन उसे ऐसा रोना छूटा···ऐसा रोना छूटा···पूरी ज़िन्दगी का रोना उसने उस दिन रो लिया। बहिनजी उतनी बुरी नहीं थीं। जब से रज्जन बड़ा हुआ तब से वे खिस-खिस ज्यादा करने लगी थीं। नहीं तो वहीं ज़िन्दगी टेर हो जाती। बिल्ली बच्चों को सात घर दिखाती है यहाँ बच्चा माँ को घर-घर की ठोकर खिला रहा है। वे अकेली हैं। पता उन्हें बच्चे को देखकर कुछ लगता था या उसी के भले की कहती थीं। जब बच्चे को लेकर कोई माँ से कहता है तू गरीब है और गरीबी के कारण तुझे वो भी नहीं करना चाहिए जो कर सकती है तो लगता है शरीर का सारा खून पतीलें में भरकर जलते चूल्हे पर रख दिया। कई बार उबाल ठंडा किया। पर आखीर में आ ही गया।

हिलता हुआ धुंधलके का साया गहरा होने लगा। लाली डूब गई थी। पास वाले मंदिर से घंटा बजने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। वह ध्वनि पत्थरों की तरह बहुत धीरे-धीरे तैर रही थी। उसने हाथ जोड़कर सिर नवाया। फिर उसे खाने-पीने का ध्यान आया। मुंशी का दिया ताला लगाकर वह ज़ीने से नीचे उतरने लगी। ज़ीने मे इतना अंधेरा हो गया कि सीढ़ियाँ डूब गई थीं। पैर रखने पर ही सीढ़ी का पता चलता था। माँ के घर के बाद से वह सीढ़ियाँ चढ़ी-उतरी नहीं थी। माँ के घर

भी वह तब तक ही गई थी जब वह पहले आदमी के साथ रहती थी। सबेरे जाती थी, शाम को जाकर वह ले आया करता था। उसे रोज़ चाहिये था। कभी रात को माँ के घर ठहर जाती तो आने पर हड्डे तोड़ता था। रुकी क्यों? आई क्यों नहीं? तेरी ही मर्ज़ी आने की नहीं थी। अनाप-शनाप बकता। कोई पुराना यार-दोस्त मिल गया होगा! फिर मेरी क्या ज़रूरत! मन होता था डूब मरे। उसके हाथ और जबान दोनों ही एक रफ़्तार से चलते थे। जितना बोलता था उतना मारता था। जिस दिन चुप रह जाता था उस दिन जान बच जाती थी। पर उसका चुप रहना ही मुश्किल था। दूसरा आदमी न खुशी में बोलता था न दुख मे। उसने कभी कुछ नहीं कहा। उसके सामने वह ही हमेशा बोलती रही। बोलती वह पहले आदमी के सामने भी काफ़ी थी। लेकिन *बोलना ज्यादा काम नहीं आता था। ज्यादा मार खा जाती थी।* आखिर में इस बोलने ने ही चुप करा दिया। अब ना बोलना रहा, ना आदमी रहा। ना बिटिया ही है, और ना माँ का घर है। बस रज्जन है, इतनी बड़ी दुनिया है और पहाड़-सी ज़िन्दगी है।

वह सडक पर आ गई थी। हलवाई की दुकान पर पूरियाँ उतर रही थी। उसका मन पूरी खाने को हुआ फिर गर्दन घुमाकर निकल गई। अगर उसे ज्यादा दिन तक पेट भरना है तो वह एक भी दिन पूरी नहीं खा सकती थी। उसने पड़चूनिये की दुकान पर से दाल, चावल, नमक, मिर्च और मसाला खरीदा। एक दियासलाई और थोड़ी लकड़ियाँ ली। एक अली में पाव-डेढ पाव दूध लिया और चीनी ली। और जल्दी-जल्दी चलकर धर्मशाला मे घुस आई।

कंगले लौटने लगे थे। नीचे वाले खन में काफ़ी शोर था। उनका शोर इतना घुला-मिला और अस्पष्ट था कि नीमा को उससे डर लगने लगा। एक औरत खुली गालियाँ बक रही थी। उसकी जगह पर किसी दूसरे आदमी ने चूल्हा रख लिया था। नीमा को देखकर वह बोली, 'अच्छा तू नई आयी है! वो लुच्चा, हरामी पैसे लेता है...एक-एक रात सुलाता है!...और यहाँ भरता जाता है। कोई कहाँ पकाये, कहाँ खाये...इस बार यह चूल्हा उसके वहीं रखकर आऊँगी!'

नीमा जल्दी-जल्दी ज़ीने चढ़ गई। रज्जन बुरी तरह सहम गया। नीमा का सांस फूल गया और उसके हाथ कांपने लगे। उसका मन हुआ उल्टे पैरों भाग ले। नीमा को ज़ीने की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए भी सुनाई पड़ता रहा, 'मैंने उस मुशिवे के बीज का बिस्तर गर्म करा था तब भी उस भड़वे ने चार दिन की चवन्नी रखवा ली थी।'

नीमा को लगा वह औरत पीछे-पीछे दौड़ पड़ी है और पकड़ने के लिए तावड़-तोड़ सीढियां चढ़ रही है। वह किसी तरह ऊपर पहुँच जाना चाहती थी। नीमा मुंशी जी के बिस्तर के पास एक मिनट को सांस लेने के लिए रुकी तो उसे लालटेन रखी हुई दिखाई पड़ी। नीमा उसे उठाकर फिर तेजी से चढ़ने लगी। `रज्जन अभी भी सन्नाटे में था और *माँ को देखे जा रहा था।*

नीमा ने रज्जन को ज़मीन पर उतार दिया और जल्दी-जल्दी लालटेन जलाने लगी। जलाते हुए उसने एक क्षण रुककर सोचा, यह भी तो मुंशी की ही है ? लेकिन फिर उसने लालटेन जला ली। अँधेरा ठोस होता हुआ महसूस होता गया था। लाटेलन की रोशनी में कोठरी बड़ी-बड़ी-सी मालूम होने लगी थी। उसे अपने छूटे हुए घर की याद आई। बाद में वह अपने घर में लालटेन जलाने लगी थी। कभी-कभी अँधेरे मे ही पड़ी रहती थी। कई बार लालटेन जलते ही भूख लगने लगती थी। इसलिए भी कई बार लालटेन जलाना टाल`जाती थी। बहिनजी के यहाँ वत्ती थी। वहाँ अन्दर-वाहर दोनों ही जगह रोशनी रहती थी। इसलिए वहाँ रोशनी होते ही भूख नहीं लगती थी।

नीमा ने बर्तन निकाले। चूल्हे के लिए ईंटें तलाश करने लगी। ईंटें कहीं दिखाई नहीं पड़ीं। चूल्हा कैसे बनेगा ?`उसने नीचे झांककर देखा। नीचेवाले खन के सहन में चूल्हे ही चूल्हे जल गये थे। रोशनी की छोटी-छोटी गुमटियां पघार गई थीं। लोग रोटी-टुकड़ा बनाते हुए भी ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे। एक औरत ज़ोर-ज़ोर से गा रही थी। एक कड़ी गाती थी और हँस पड़ती थी, 'भरतपुर लुट गया रात मोरी अम्मा…'

उसके साथ-साथ कुछ कंगले अपने तसले बजा रहे थे। औरत अपने चूल्हे पर से ही बोली, 'अरी राम रक्खी, तू रोज इसी वखत भरतपुर

लुटवाने बैठ जावे है। मुई, कभी दिल्ली भी लुटवाया कर। दिल्ली से ऐसी कौन तेरी रिस्तेदारी है।'

'मेरा लगता जो दिल्ली में भीख माँगे है"' कहकर वह फिस्स से हँस दी। फिर बोली, 'अरी मेरे भरतपुर है, मैं अपना भरतपुर लुटाये दूँ हूँ, तेरे पास दिल्ली हो तो तू अपनी दिल्ली का दरवाजा खोल"'यहाँ लूटने-वालों की कमी थोड़े ही है। दिल्ली छोड़ नखलऊ लुटवा ले। दिन भर मुर्दों को बखेर लूटे है"'जब दिल्ली लुटने लगेगी तो कौन पीछे हट जायेंगे।'

कंगला बोला, 'अरी चोंचली, अभी ठहर के फाटक खोलना। भात तैयार हो जाने दे। खा-पी लूं। कई दिन से भात नहीं खाया। एक आदमी का पाकेट मारा तो भात बना। भीख ईमानदारी से मिल जावे थी पर अब साले चोरी में तो हजार दे देंगे, माँगे पर पैसा नहीं देंगे। मैंने भी सोचा मारो पाकेट। ईमानदारी से नहीं खाने देते तो बेइमानी से खाओ।"'जरा खाकर तैयार हो जाऊँ"'दिल्ली लूटने में तो दम लगेगा ना। दिल्ली-दरवज्जा नेड़ा है।'

दूसरा बोला, 'मैं तो खाकर टंच हो गया"'कह तो आऊँ?'

चोचली बोली, 'अरेऽ दिल्ली लूटेगा वो जो दिल्ली का बादसाह होगा। तुम कंगले क्या लूटोगे। फौज-फर्राटा लगी पड़ी है"'हाँ s s! उधर नजर मत उठाना।' कहकर रोटी थपकने लगी।

एक साधूनुमा आदमी चिमटा बजाकर बोला, 'बम-बम भोला"' लाखों का माल मिनट में तोला।'

नीमा लालटेन लेकर ईंटें तलाश करने लगी। छत की दूसरी तरफ कोने में ईंटों का एक चूल्हा बिखरा पड़ा था। ईंटें धुएँ से एकदम काली थीं। पता नहीं किसका चूल्हा रहा हो? जात-कुजात कौन रोटी बनाता हो? वह ईंटें उठाकर नल के पास ले गई। नल के नीचे रख-कर धोने लगी। ईंटों का चूल्हा उसने कोठरी के दरवाजे से थोड़ा हटकर लगाया। चूल्हा लगाकर उसे लगा कि उसमें और कंगलों में इतना ही फ़र्क है कि उसका चूल्हा ऊपर लगा है और कंगलों के चूल्हे नीचे हैं। इससे तो अच्छा वह भूखी सो जाय। कहना आसान है रहना मुश्किल।

आग जलाकर-उसने खिचड़ी चढ़ा दी। आग की छोटी-सी गुमटी उसकी कोठरी के बाहर भी उभर आई। पतीली के नीचे से आग की नोकें बार-बार निकलती थी और अन्दर सिमट जाती थी। वह बैठी उन्हें ध्यान से देख रही थी।

खिचड़ी के बाद उसने रज्जन का दूध गर्म किया। रज्जन दरी पर ही सो गया था। उसने यही प्रोग्राम बनाया, खिचडी खाकर वह उसे पेशाब करायेगी फिर दूध पिलाकर सुला देगी। रज्जन को इस तरह दूध पिलाने का मौका कम ही आया है। अवसर रोता ही रोता सो गया है। बेचारा खाम चूस-चूसकर ही इतना बड़ा हो गया।

उसने थाली में खिचड़ी उलटी। पूरी थाली मे फैल गई। उसमें से धुआँ उठता रहा। एक-दो क्षण वह देखती रही। उसे काफी भूख लगी थी। लेकिन उसे ठडी करके खाना चाहती थी। पर ठडी करके खाने का सकून सँजोने मे उसे काफी दम लगाना पड़ रहा था।

बहिन जी के यहाँ से आकर उसने भला किया या बुरा, यह समझने का अभी अवसर नहीं आया था। पर इस बारे में वह निश्चित थी कि बहिनजी ने रज्जन के खिलौनो के बारे मे कहकर बुरा किया। उन्हे खिलौनों को लेकर क्लेश नही करना चाहिये था। उनके पैसो मे से तो लाई नही थी। हालाँकि उन्ही के दिये हुए महीने के दस रुपये थे पर वह जान तोड़कर काम भी तो करती थी।

खिचड़ी उसे अच्छी लग रही थी। बहुत दिनों बाद अपना खाना अपने-आप बनाकर खाया था। नही तो दूसरों के बचे मे से ही खाती थी। अच्छी बनी थी। दूसरे कौर के साथ उसे मुंशी की बात का ध्यान आया। वह भटियारिन नही बनना चाहती। खाने का खाना बनायेगी और ऊपर से दो बातें सुनेगी। जितने मुँह, उतने सवाद। फिर यहाँ रहना भी नही। मुशी की नजरें भी तो वैसी ही हैं। झूठ कहता है वह उसका साला था। वो यही था। कंगली ठीक कह रही थी तो··· क्या पता, क्या हो? अच्छा तो यही है दाई को ढूँढा जाय। उसके सहारे बिटिया को भी देख लेगी। अब तो और भी सुन्दर निकल आई होगी। कहती थी ना, तेरे ऊपर है। कई बार सोचा लुक-छिपकर देख

लिया जाय। बस मन कच्चा पड़ गया। अब हृदय तो ऐसा हो गया कि नोह गुबाये फट जाय। उसे देखती तो पता नहीं क्या हो जाता? उसके बाप को पता चलता तो वह बिटिया को मारता। तू क्यो गई? जब भाग ने ही छुड़ा दिया तो छूटे हुआ का क्या मोह! मन को समझा लिया। बेटी की जात है कौन हमेशा पास रहेगी। समझ लिया अभी से परायी हो गई। मजबूरी आदमी को खूब समझा देती है।

वह कल सवेरे-सवेरे ही निकल जायेगी। दाई को खोजेगी। जीती हुई तो क्या पता, क्या बानक बन जाय! कही काम ही दिला दे। काम करने में क्या हिजो? जैसा बखत पडा है उसी के हिसाब से चलना चाहिये। यही तो कहेंगे फलां पडते की घरवाली खाना बनाती घूमती है। उसके सामने तो सुख ही भोगा है। वह नही रहा तो क्या करे? मुसीबत तो इसी का नाम है। जब आदमी के पैरो तले की जमीन पोली हो जाय और वह खड़ा-खड़ा खड्ड में समा जाय, निकल ना सके तो क्या करे? वहीं विश्राम करने लगे? नहीं!

नीमा बर्तन उठाकर नल के नीचे मांजने लगी। बर्तन मांजकर दीवार के सहारे खडे कर दिये और रज्जन को पेशाब कराने लगी। दूध पिलाया तो रज्जन ने नीद मे पिया नही। उसे जोर का गुस्सा आ गया। एक चांटा जड़कर बोली, 'अरे कमबखत, दूध वैसे ही देखने को नही मिलता। जरा बहुत पेट काटकर लाई हूँ तो ऐसे नखरे कर रहा है। पता नही ऐसे किस राजा का वेटा है? तेरी माँ तो इन कंगलियो से भी गई गुजरी है। वे माँग-ताँगकर, चोरी-चकारी करके पेट तो भर लेती हैं। मैं तो यह भी नही कर सकती।'

रज्जन सिसक-सिसककर दूध पीने लगा। दूध पी लेने पर नीमा उसे प्यार करने लगी, 'बेटा, तूने अपनी इस कलमुंही माँ का कहना मानकर कलेजा बहुत ठंडा किया। पहले ही मान लेता तो इन टूटे हाथों से क्यों तुझे मारती। भगवान करे ये हाथ टूट जायें। ऐसे फूल-से बच्चे को मार दिया।'

वह फिर सो गया। नीमा बाहर निकली तो चूल्हा भौंआने लगा था। उसने पानी डालकर बुझा दिया और बची हुई लकड़ी कोने मे

दीवार के सहारे खड़ी कर दी। जब तक रहना है तब तक तो खाने-पकाने का हिसाब रखना ही पड़ेगा। वह ऊपर से झाँकने लगी। सब कंगले खा-पी चुके थे। कुछ लेट गये थे। किसी-किसी का चूल्हा अभी तक जल रहा था और नीमा तक पहुँच रहा था। कुछ बुझ रहे थे। बुझने से पहले अंधी-अंधी-सी चमक छोड़ रहे थे। बीच-बीच में किसी की आवाज़ सुनाई पड़ जाती थी, 'अरे रामी, क्या मिला ?'

'मिला ! मिलना क्या कोई आसान है या देने वाला मेरा चाचा लगता है। साले बड़े चौकस हो गये हैं। धरम को तो पैसे वालों ने जूते के नीचे मौजा बनाकर पहन लिया। धरम की बात करो तो ऐसे दुत-कारते हैं जैसे बहू-बेटी को गाली दे दी हो।'

'हाँ, साले उल्टे माँग लें। बस वही देता है जिसका बाल-बच्चा बिमार हो या मुकदमे-सुकदमे की हार-जीत हो रही हो'''बाकी सब अपनी माँ के यार हो गये है। पहले मंदिर पर जा बैठते थे तो रुपये के पैसे ले के उठते थे। सस्ते का ज़माना था'''अब तो रुपया पैसे मे लुट गया।' आगे आने वाला ज़माना और मुश्किल पड़ेगा। हम तो काट लेंगे, इन छोटो-छोटों का क्या होगा ?'

'अरे, सीधी बात'''तकाई और सफाई। तक लो और जप्प दो। साधू के साधू और माल का माल। या फिर सौ-पचास में कानी-बूचो लौंडिया खरीद लो। पाँच-सात रुपये रोज के सिर पड़ जायें। अभी दया सिद्ध हो जावे है।' हँसकर बोला, 'या फिर चोंचली जैसी हो। जब आई थी तो सीधी-सादी थी। अब ऐसी छिनाल हो गई कि आदमी को उल्टा सिकार कर ले'''और साले का पता ना चले। क्यो री चोंचली !'

चोंचली नींद में आ गई थी। नींद में से ही बोली, 'अरे जा-जा''' कलमुँहे'''में चोरी-चकारी करती थोड़े ही घूमती हूँ।' कहकर वह फिर सो गई।

'भैया रे, उस टुंडे चौधरी को देना खल जावे है। पाँच पैसे सैकड़ा बहुत होवे है। मिले ना मिले शाम को चवन्नी-अठन्नी टिकवा लेता है। ना दो अगले दिन जगह बदल देवे है। बड़े चौराहे के बायी तरफ वाले खम्बे के नीचे दस साल से बैठूँ हूँ। वहाँ पहले कमाई बढ़िया थी। जब

से कोतवाली का दरवज्जा दूसरी तरफ हुआ कमाई डूब गई। पहले रुपैया तक दे देता था। अब भी रुपैया ही मांगता है'''नही तो कहता है हट्ट। उस जगह की साख है, लोग जाने हैं'''मरा-मरा जाऊँ तो बात दूसरी, पर जीते-जी इज्जत कैसे खो दूँ।'

उसकी बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। बराबरवाले ने भी करवट बदल ली।

नीमा हट गयी। कोठरी में लालटेन जल रही थी। घुसते ही उसे लगा, उस लालटेन की एक तरफ़ मुशी का चेहरा बना है, दूसरी तरफ मुंशी के साले का। दोनों चेहरे एक-से हैं। वह ठिठक गयी। उसका मन हुआ, लालटेन बुझाकर नीचे रख आये। लेकिन उसे डर लगा, कहीं जीने में कोई कंगला ना खड़ा हो। उसने कोठरी की कुंडी अंदर से चढा ली। उसे फिर वही दोनों चेहरे नजर आने लगे। जल्दी से लालटेन बुझाकर लेट गई।

अगर कही कुछ ना हुआ? दाई मर गई? तो वह कंगली हरगिज़ नही बनेगी चाहे जमना में छलांग लगानी पड़े। अगर उसके पहले आदमी ने दूसरी शादी कर ली होगी तो'''? कर ली होगी तो कर ले। भगवान ने दो हाथ तो दिये हैं। दो हाथ ना भी हो, जान देना तो अपने हाथ है। उसने रज्जन को सीने से लगा दिया।

उसकी आँख झपकी तो उसे लगा कंगले नाच रहे हैं। चौककर इधर-उधर देखा। अँधेरा था। वह काफ़ी देर तक जगती रही। उसे बार-बार लगता रहा, नीचे से मार मुलक की आवाजें ऊपर आ रही हैं। कुछ लोग जीने में चढ रहे हैं। फिर आँख लगी तो मुंशी दिखाई दिया। एकदम बेपर्दा खड़ा था। नीमा का शरीर पसीने से तर हो गया। वह चुपचाप लेटी रही। उसने थोड़ा-सा दरवाज़ा खोल लेना चाहा। पता नही बाहर कौन खड़ा हो। वह दड़ साधे लेटी रही।

तड़के ही उठी। तारो की छाँह थी। उसने तारों को पढ़कर वक्त का अन्दाज लगाना चाहा। बहिनजी के और अपने घर जब रात को

आँख खुलती थी तो सप्तऋषि का खटोला देखकर वक्त का अन्दाज़ लेती थी। सोने से पहले वह सप्तऋषि देखकर ही सोई थी। पर इस समय उसे दिशा का ज्ञान नहीं हो रहा था।

कोठरी का ज़रा-सा दरवाज़ा खोला। गर्दन निकालकर इधर-उधर झाँका। छत वैसी ही नगी-बूची पड़ी थी जैसी रात छोड़कर सोई थी। छोटी-छोटी मुँडेरों से घिरी हुई छत के सीमित विस्तार को वह खड़ी देखती रही। दबे पाँव निकलकर बाहर गई। जीने में झाँका। जीना भी उसी तरह रात-भर अनचला पड़ा रहा था। उस पर उसे अपना ही चलना महसूस हो रहा था। नीचे झाँका। चूल्हे बुझे पड़े थे। बस एक कगला सिगरेट पी रहा था। सिगरेट का फूल बार-बार अपने वजूद के हिसाब से बढ़ता था और मुर्झा जाता था। लगता है अभी रात बाक़ी है। उसे लगा दो-चार कगले और उठकर बैठ गये। एक ने कहा, 'अरे बाबा, दियासलाई दे!'

उसने जलती हुई सिगरेट ही उसकी तरफ़ बढ़ा दी। उसने भी सुलगा ली। एक के बाद एक तीन-चार बीड़ियाँ और सिगरेटें सुलगती दिखाई पड़ीं। उसे आश्चर्य हो रहा था कंगले इतने चुपचाप कैसे सिगरेट पी रहे हैं! बोल क्यों नहीं रहे! रात उन लोगों ने धर्मशाला को सिर पर उठा रखा था। उसका पहला आदमी भी बोलता था। लेकिन सवेरे उठकर नहाने तक वह चुप रहता था। टट्टी-वट्टी हो आता था तब बोल फूटता था।

नीमा को लालटेन का ध्यान आया। अभी कंगले अपनी-अपनी जगह बैठे हैं। हो सकता है उठकर सारी धर्मशाला में फैल जायें। उसने जल्दी से लालटेन उठायी और दौड़ती हुई अँधेरे और अनचले जीने में उतर गई। जीना चल गया। जीने की आखिरी सीढ़ी पर खड़े होकर बाहर झाँका। फिर दौड़कर लालटेन उसी जगह रख आई जहाँ से उठा कर लाई थी। साँस रोककर फिर चढ़ती चली गई। जब तक वह ऊपर नहीं पहुँच गई उसे लगता रहा, कोई ना कोई उसके पीछे ज़रूर है। छत पर आकर उसने पीछे मुड़कर देखा। जीना फिर वैसा का वैसा ही हो गया था। केवल उसके चढ़कर आने की धमक से मुक्त होने की कोशिश

तरह बेपर्दगी करता नहीं घूमता था। मुंशी हद दर्जे का गंदा भ्रादमी है भ्रौर···भ्रौर···! खैर, उसका उससे क्या लेना-देना। पर जिस तरह की बात शाम उस कंगली ने उसे देखकर कही थी उससे उसका जी घबरा गया।

रज्जन उठकर रोने लगा। था। नीमा ने उसे गोद में उठा लिया। जब रोकर चुप हुआ तो उसने अपनी तरह से पूछा, 'माँ, बहिनजी के यहाँ कल चलोगी ?'

नीमा उसको दूसरी तरह बहलाने लगी। वह उसे नल के पास ले गई। मुँह धोया। उँगली से उसके दाँत माँजे। फिर वापिस ले भ्राई। कल का बचा हुभ्रा चबेना फिर सामने डाल दिया। वह टूँगने लगा। नीमा खुद भी जल्दी-जल्दी तैयार होने लगी। उसने रुपयों को सँभाल-कर कमर से बाँध लिया भ्रौर ताला बन्द करके छत पर निकल भ्राई।

भोर का उजाला कुंड मे खुले नल के पानी की सतह की तरह बढ़ रहा था। नितरता-नितरता। काँपता-सा। मकानों भ्रौर रास्तों पर नीचे से ऊपर-ऊपर उठ रहा था। उसे भ्रपने घर का ध्यान भ्राया। तंगी की वजह से थोड़े-से पैसों के लालच मे छोड़ दिया। उस वक्त भ्रगर उसे भ्रक्ल भ्रा गई होती तो उसकी जिन्दगी भ्रपने ही घर में कट जाती। उसे भ्रादमी की इज़्ज़त का ख्याल था। दरिद्रता के साथ उस घर में रहने में उसे शर्म भ्रा रही थी। वहाँ उसके भ्रच्छे दिन गुज़रे थे।

नीमा ज़ीने पर से एक-एक पाँव जमाकर रखती हुई उतर रही थी। हर मोड़ पर रुककर वह भ्रागे का भ्रन्दाज़ लेती थी। बाहर फैली हुई काली चादर भ्रब ज़ीने में सिमट भ्राई थी। फिर भी वह उतरने लायक भ्रपना रास्ता देख पा रही थी। नीचेवाली सीढी पर रुककर उसने टोह ली। कहीं रात की तरह ही कंगले उसके लिए उल्टा-सीधा न बकने लगें। कंगले एक-एक करके सीढी के भ्रागे से निकल रहे थे। ज़्यादातर लोगों के हाथों में बीड़ियाँ थीं। कुछ तेज़ी मे थे। एक भ्रादमी ज़ोर-ज़ोर से गाली बक रहा था, 'हरामज़ादे, भ्राठ बजे तक पड़े सोते रहते हैं। साले नवाब हैं। भ्राज शाम को भ्राना तब बताऊँगा···मुंशी ने पैसे ले-लेकर धर्मशाला को सराय बना दिया। रात-भर निगरानी

करे तो पता चले । साला पाँच रुपये टिकाकर चाहता है, इन डाकुओं की टंडवाल करूँ।'

एक कंगली हँसकर बोली, 'सिपाही जी, तू भी सो लिया कर···मैं कर लिया करूँगी तेरी टंडवाली। जो मुंशी लेता है तू भी लिया कर मेरे राजा···!'

बाकी कंगले हँस दिये । उनके हँसने से सिर्फ़ आवाज़ें ही आवाज़ें निकलीं और फैल गई ।

वह और ज्यादा बकने लगा, 'हरामज़ादी बकती है।'

नीमा तेज़ी से बाहर चली गई। बाहर निकलते हुए उसे लगा, वे कंगले उसी के पीछे दौड़ पड़े हैं। छिचोड़ डालेंगे। यहाँ बचानेवाला भी कोई नहीं होगा। बाहर सड़क पर खड़े कुछ कंगले अपनी-अपनी राह लगने से पहले इधर-उधर देख रहे थे । एक आदमी जलेबी खाता आ रहा था । एक कंगली ने अपना चेहरा बदलकर दयनीय बना लिया और मरियल आवाज़ में पास जाकर बोली, 'बाबू, दो रोज़ से भूखी हूँ...'

उस आदमी ने एक बार उसकी तरफ देखा और दो जलेबी उसके कटोरे मे डाल दी । कगली ने दोनो जलेबी एकसाथ मुँह मे रख ली । उसकी देखा-देखी एक आँख से काना और दूसरी आँख से मिचमिचा भिखारी अंधा बनकर घूमता हुआ उसी आदमी के सामने जा पहुँचा और बोला, 'एक पैसा···अंधा हूँ···'

उस आदमी ने भद्दी-सी गाली दी और पत्ता उसके ऊपर फेंक दिया। उसमें एक जलेबी ही बची थी। वह नीचे गिर गई। मिचमिचे ने उठाकर पोंछ-पाँछकर मुँह मे डाल ली।

कगली फौरन बोली, 'देखा, कैसा दाता ढूंढा··· साला सबेरे-सबेरे मना कर देता तो दिन गया था । मना कर दिया होता तो मैं भी इसके मुँह पर थूके बगैर ना मानती।'

'हाँ, इस साले तेरे दाता ने गाली देकर ही सही, पत्ता तो दिया। ना देता तो क्या कर लेता ! सबेरे-सबेरे चाहे कोई मिट्टी की चुटकी उठाकर दे दे···पर दे तो।'

दूसरी कंगली ने एक बच्चा गोद में लटका लिया और देखते-देखते रोने लगी, 'इसका बाप मर गया ' लाहस पड़ी है बाबू ''

नीमा गली में मुड़ गई। उसके अन्दर जल्दी से जल्दी धर्मशाला छोड़ने का उतावलापन भर गया था। गली में वह तेजी से चलती चली गई। मेहतर सड़क साफ कर रहे थे। भिश्ती मशक से पानी डाल रहा था और भंगी नाली फींच रहा था। दिन इतना चढ़ आया था कि आँखों में गुवने लगा था। धूल बार-बार नीमा और रज्जन को ढक लेती थी। रज्जन कुछ-कुछ बोलता जा रहा था। नीमा का मन बार-बार होता था कहीं रुककर थोड़ी-सी चाय पी ले। लेकिन वह रुकना नहीं चाहती थी।

हालाँकि शक्ल से उसे बहुत कम जानते थे। पर उस मोहल्ले के ज्यादातर लोग उसके आदमी से परिचित थे। वह रज्जन को लिये हुए कुछ ऐसा महसूस कर रही थी कि वह पहचान ली जायेगी। पहचाने जाने पर उसके लिए मरन हो जायेगा। हो सकता है कोई पूछ ही बैठे''। तो वह क्या जवाब देगी ?

इस सवाल ने उसकी चाल और तेज कर दी। उसका मन हुआ कि वह लौट जाये और उन रुपयों से किसी दूसरे शहर में ठौर-ठिकाना बना ले। न पहले आदमी के साथ रहने की ही बात उठेगी और न इस शहर में रहकर इज्जत से पेट पालने की। वह उस मोहल्ले के छोटे-से बाजार में पहुँच गई। नुक्कड़वाली दुकान पर ही गर्म-गर्म जलेबी बन रही थी। उसका आदमी इसी दुकान के बारे में बताया करता था। उस दुकान के सामने से वह सटाक से निकल गई। उसे क्षण-भर को अनायास अहसास हुआ, दुकानदार उसकी ओर ही देख रहा है।

मोड़ के बाद आख़िरी मकान उसी का था। अपने आदमी के साथ उस मकान में वह सालों रही थी।

सामने से गुज़रते हुए उसकी नजर मकान पर गई। मकान बदल गया। उसने अच्छी तरह देखना चाहा। दोबारा नजर उठाते हुए उसे भय-सा लगा। हो सकता है वहाँ उसके आदमी का भतीजा या वो ढाबे-वाला आदमी खड़ा मिल जाये। पर उसकी नजर अपने-आप ही उठ गई।

मकान का दरवाज़ा बदला हुआ था। पुराना दरवाज़ा पता नहीं कहाँ चला गया था। घंटों वह पुराने दरवाज़े की दरारों में से खड़ी होकर सड़क पर झाँका करती थी। क्षण-भर को लगा अभी भी वह उसी दरवाज़े के पीछे खड़ी सड़क पर झाँक रही है। लेकिन तुरन्त ही उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया। वह बच्चे को लिये अपने घर के सामने सड़क पर थी। झपटकर आगे बढ़ गई। उसे इस बात का अन्दर ही अन्दर दुख था कि उसके घर के दरवाज़े बदल दिये गये हैं। ऐसे चूल धूल से मिलाकर लगाये गये हैं कि उनके पार देखा तक नहीं जा सकता। उसने फिर घूमकर देखा। उसे लगा दरवाज़े खुले हैं और चार आदमी उसके पति की अर्थी लेकर निकल रहे हैं। वह उनके पीछे-पीछे पागलों की तरह दौड़ी आ रही है। अर्थी चली गई और वह अकेली दरवाज़े से लगी खड़ी रो रही है। डर ने उसे बुरी तरह दबोच लिया। उसे अपने पैरों में कँपकँपी महसूस होने लगी। उसे तुलसी के बिरवे का ध्यान आया। उसके पास बस मंजरी ही रह गई थी। उस मंजरी को अब वह कहाँ रोपेगी ? पता नहीं तुलसी का बिरवा है भी या नहीं ? हो सकता है उसके सब पत्ते पीले पड़कर झर गये हों।

रज्जन मिमियाने लगा। वह उसे सँभालते हुए आगे बढ़ गई। मकान के दूसरी तरफ ढलान से नीचे उतरकर झुग्गी और झोपड़ियाँ थीं। उनमें छोटी जात के लोग रहते थे। एक बार वह दाई को बुलाने के लिए वहाँ जा चुकी थी। तब रज्जन होने वाला था। आदमी के न रहने की वजह से कमर बुरी तरह टूट गई थी। घर में खाने-पीने की कमी थी और भूख जब देखो तब अग्नि की तरह बढ़ी रहती थी। दाई के पास वह कुछ सामान बिकवाने ले गई थी। उन झुग्गियों के बीच उसी का मकान कच्ची ईंटों का बना था।

ज्यों-ज्यों वह उस मकान के पास पहुँचती जा रही थी उसका मन डर रहा था। पता नहीं दाई होगी भी या नहीं ? नहीं होगी तो वह क्या करेगी ? अभी तो उसके पास रुपये हैं भी, वह कहीं जा भी सकती है। फिर तो वह कहीं की नहीं रह जायेगी। उसे कंगलो का ध्यान आया। वह कंगली जलेबी पाकर कैसी खुश हुई थी। कंगली हरगिज़ नहीं बनेगी

चाहे उसे प्राण देने पड़ें। उसने चलते-चलते एक क्षण को आँखें बन्द कर ली। रज्जन का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया। छलांग लगा भी जायेगी तो उसके लिए डूबना मुश्किल हो जायेगा।

वह दाई के घर के सामने पहुँचकर ठिठक गई। पहले वह दाई के बारे मे जान लेना चाहता थी। अगर वह नही रही होगी तो बाहर से ही बाहर लौट जायेगी। किसी को अपना मुंह दिखाने से क्या फ़ायदा ? पेड की ओट मे खड़ी हो गई। वह पेड़ थोड़ी ऊँचाई पर था। दिन निकला ही था इसलिए सन्नाटा ज्यादा नही हट सका था। बस पेड़ ही पेड़ बेतरतीबी से फैले पड़े थे। वे भी सकते-से मे ही थे। धीरे-धीरे हिल रहे थे। दिन निकल आने वाला झीनापन पीछे हटते-हटते काफी हट-कर दूर पर रुका-सा लग रहा था।

जंगल से खाली लोटा लेकर लौटती एक औरत से दाई के बारे मे पूछा। वह पहले तो खड़ी होकर नीमा को देखती रही फिर पूछा, 'पे बच्चा कितने महीने का है ?'

नीमा चुप रही। फिर अपने-आप ही उसकी तरफ देखकर बोली, 'पेट तो ऐसा ना लगे !'

नीमा को उसकी बात पर हँसी आने को हुई पर हँस नही सकी। हँसी आने के अहसास के साथ ही उसे यह भी लगा कि वह जानती तो है पर भूल रही है कि हँसा कैसे जाता है। नीमा कुछ नही बोली, तो उस औरत ने एक लम्बा-सा हाथ उठाकर इशारा किया, 'वो आ रही है।'

नीमा ने घूमकर देखा तो दाई पीठ झुकाये धीरे-धीरे आ रही थी। उसका मन हुआ, झपटकर उसके पास पहुँच जाय और उसके कंधे हिला-कर कहे—चाची तुम अभी तक जिन्दा हो, मैं तो समझती थी तुम मर-मरा गई ! पर तुम जीती हो यह बहुत अच्छा हुआ। बताओ मेरी बिटिया कैसी है ? तुमने उसे कब देखा ? कितनी बड़ी लगती है ?. और…! वह अगला सवाल नही बना पायी। कुछ सोचने के बाद उसे सवाल ध्यान आया…और उसने शादी तो नही कर ली ?

वह नज़दीक आ गई। उसकी कमर थोड़ी और झुक गई थी।

वह पेड़ के पीछे से निकलकर बोली, 'राम-राम चाची।'

'कौन है री ?' उसने झुकी कमर को सीधी करने की कोशिश करते हुए पूछा। फिर अपने-आप ही बोली, 'अरी चिटिया तू है···कहाँ रही इतने दिन? तूने तो चाची की खबर तक नहीं ली, चाची मरे या जिये।'

नीमा का मन हुआ वह सिर्फ रो दे। पर उसका विश्वास रो देने पर भी नहीं जमा। वह गर्दन को इधर-उधर घुमाकर वैसी की वैसी ही खड़ी रही।

रज्जन उसको आँखें गोल करके देख रहा था। दाई ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, 'बेटा तो बड़ा हो गया।' फिर वह रज्जन से तुतलाकर बतियाने लगी, 'अरे कलवे, तूने माँ को बहुत दुख दिया। बड़ा हो के सुख पहुँचाइयो। तू ही इस अभागन का सुख है। ये बिचारी तो गिरे कनक-सी अभागी हो गई।'

नीमा को फिर रुलास-सी महसूस होने लगी। उसे लग ही नहीं रहा था कि वह रो भी पायेगी या नहीं। उसका आत्मविश्वास हिल-सा गया था।

दाई खड़ी-खड़ी बोलती जा रही थी, 'जब भी तेरे घर के सामने से निकलूँ हूँ, दिल में हूक-सी उठे। पता नहीं बिचारी कहाँ धक्के खा रही होगी? किस हाल में होगी? उस कमबख्त ने घर से बेघर करके अच्छा नहीं किया।'

बहुत देर बाद मुश्किल से उसका बोल फूटा, 'हाँ चाची, धक्के ही धक्के तो लिखे हैं भाग में···'

'अरे उस घर को तेरे आदमी के उस बारे भतीजे ने भी नहीं रखा। बेच के टके बना लिये। होटल बेच के कहीं चम्पत हो गया। वो तो माया का भूखा था।'

नीमा को इस बार लगा वह बुक्का फाड़कर जरूर रो पड़ेगी। लेकिन रोने के बजाय उसकी साँस रुकने लगी। रज्जन उस बुढिया को ही देखे जा रहा था।

दाई बिना रुके बोल रही थी, 'होटल मे जो वो मिस्सर नौकर था···जो घर की बात करने आया करे था···एक मेरी आसामी के घर काम कर रहा है। रोटी थेप-थेप के रखे जावे। एक दिन तुझे पूछ रहा

था। कह रहा था—'चाची, उस वखत नियत में फरक आ गया। वो बेचारी भी घर से बेघर हो गई। होटल भी हाथ से निकल गया। जिस होटल को पंडत ने और मैंने बच्चे कीतरह पाला-पोसा था उसी को मेरी आँखों के सामने उस बदमास ने बेच दिया। बुरे काम का अच्छा फल नही होता। इसी जिन्दगी में भगवान ने सिच्छा-दे दी।' दाई ने रुककर पूछा, 'अरी, मैं ही बके जा रही, तू तो बता कहाँ-कहाँ रही ? कैसी कटी ?'

नीमा की समझ मे नहीं आ रहा था कि बात कैसे शुरू करे। उसने रज्जन को नीचे उतार दिया। वो जमीन पर खेलने लगा। दाई बोली, 'चल घर मे बैठ के बात करेंगे···'.

'नही चाची, अब जाऊँगी।'

'अरी ऐसे कैसे चली जायेगी। चा' पीके जाना। अब तो मैं भी अकेली पड़ गई। बेटे सब नौकरियों पर रहने लगे। अरे झूठ क्यों कहूँ, बेटियो का तो ब्याह के बाद भी माँ-बाप के साथ धागा-सा बँधा रहे पर बेटे तो ब्याहते ही पराये हो जावे हैं। कौन किसका बेटा, कौन किसकी माँ! फिर उन्हें क्वाटर मिल गया। मैं काहे किसी को रोकूँ! यो तो उसके सोचने की बात थी। बहू ने ऐसी बंदर टोक लगाई कि सब कुछ अपने-आप ही गप्प कर गई। वो ही ना रुका जो अपना अस था तो दूसरा कौन रुकता! दीदो मे पानी हो तो रोया ही जावे है। मरे पर ही कही जाके दीदो का पानी सूखे। जब तक आदमी जीवे है तब तक टप्पक-टप्पक लगी ही रहवे। दीदे ना होते तो आदमी दुग-सुख को छिपा भी लेता पर खैर···!'

वह उसे ले गई। खाट पर बैठकर सुस्ताती हुई बोली, 'चाय का पानी चढ़ा दूँ बिटिया।'

नीमा का मन हुआ मना कर दे, पर वह चुप रही। अन्दर ही अन्दर समझती रही, कैसे पूछे ? क्या पूछे ?

दाई बोली, 'पाव दूध रखा है, पिला दे। मेरे द्वारे तो पहली बार बेटे को लेकर आई है। ये बिचारा तो तंगी में भी मेरा हिस्सा दे के गया।'

नीमा ने उसके लिए भी मना करना चाहा। पर कुछ कह न सकी। उसे लगा उसका अपने ऊपर से अधिकार खत्म होता जा रहा है। जो वह चाहती है न कह पाती है और न कर पाती है।

दाई ने थोड़ा-सा पानी डाल के रज्जन के लिए दूध बना दिया। नीमा दो मिनट तक उसे हाथ में थामे रही फिर पिलाना शुरू किया। रज्जन एक सांस मे सब पी गया। पीकर उसकी आँखें चमकने लगी। वह धीरे-धीरे जाकर दाई के पास बैठ गया और उसकी तरफ देख-देखकर मुस्कराने लगा।

नीमा ने कहा, 'चाची, बहुत दुख उठा रही हूँ। सिर को साया है ना पेट को रोटी। कहीं कोई काम दिला दो जिससे पेट पल जाये। नहीं तो मौत ही बची है। इसे लेकर उसी की सरन में चली जाऊँगी।' उसका गला रुँध-सा गया।

दाई बोली, 'अरी बिटिया, मौत ही कौन तेरे बुलाये आ जायेगी। दाही-मिचौनी खेलने लगी तो क्या करेगी ? तुझे बेटे को ले के वहाँ जाने का हक किसने दिया ? अरी पगली, ये ही तुझे जिन्दा रखेगा।'

'जहाँ बिटिया छूटी वहाँ बेटा ही छूट जायेगा तो क्या है ? रज्जन के बाप कहा करें थे, रोटी के लिए भी भाग होना जरूरी है। तू कहती है मौत अपने बुलाये नहीं आती। उनकी बात भी सच्ची थी। तेरी बात भी सच्ची होगी। तो मैं मिटी काहे वास्ते हूँ। अपने चाहे न खा सकती हूँ, न मर सकती हूँ, न बच्चा पाल सकती हूँ और न जी सकती हूँ …!'

दाई हँस दी। उसका मुंह खुलकर डाकखाने के बम्बे जैसा हो गया। बोली, 'अरी, मुझे देख ना। जरा भी दरवाजा खटकता है तो उतावली हो जाती हूँ…आ गई मौत। पता चलता है हवा थी। बस कुंडी हिलती हुई मिलती है।' वह फिर हँस दी।

नीमा नीचे की तरफ देखते हुए बोली, 'कल से उस नुक्कड़ वाली धर्मशाला में पड़ी हूँ। रात-भर कंगले नाचते रहे। मुझे लगता रहा, रस्सों से बाँधकर मुझे वे अपनी तरफ खींच रहे है। वहाँ का मुंशी… रात-भर बेपर्दा घूमता रहा। भगवान ने औरत की जून देकर पता नहीं मुझसे कब का बदला लिया। पहला था, वो भी मेरी इसी जून

को रोया करता था। जो मिलता है उसे मेरा मुंह दिखाई दे, ना हाथ और ना पैर"बस वही सब दिखता है। जैसे मैं नंगी घूमती हूँ। या मेरे चेहरे की जगह वही सेब की गुट्ठल बनी है। तू बता मैं क्या करूँ? चाची तू मुझे अपने हाथो जहर दे दे। एक को साथ लिये घूम रही हूँ, दूसरे का पता नही मरे या जिये?'

'ऐसी भाखा ना बोल बिटिया। भगवान उसकी उमर लगावे। वो तो बतेरी सुन्दर निकली है। पर यो तो देह धरे का दोस-धरम है, भोगना ही पड़ेगा।'

'अब तो उसके बाप ने उसका ब्याह करके अपना ब्याह रचा लिया होगा?' नीमा ने जवाब की इन्तजार में उसकी तरफ देखा।

दाई फिर हँसी, 'अरी, अब उससे ब्याह कौन रचायेगा? पर बिटिया की उठान अच्छी है। उसी का ब्याह करने के चक्कर मे है। कभी-कभी मिल जावे है तो पूछा करे—कहाँ है चाची, तेरी धरम की बेटी?'

नीमा चुप हो गई। उसके चुप होने से लगा, वह पूरी बात सुन लेना चाहती है। रज्जन बाहर निकल गया था। दाई ने चाय बना ली थी। चाय गिलास मे उडेल रही थी। नीमा की नजर बाहर रज्जन पर टिकी थी। बैठे ही बैठे सरककर चाय का गिलास उसकी तरफ बढाती हुई बोली, 'ले बिटिया, पी ले।'

नीमा ने गिलास तो पकड लिया। एक मिनट पकड़े रही फिर जमीन मे रख दिया। उसे लगा, चाय के ऊपर तिरमिरे तैर रहे हैं। उसकी तबीयत मालिश करने लगी।

दाई ने पूछा, '*रख क्यों दिया बिटिया?*'

'पीती हूँ, गरम है।' चाय जमीन पर ही रखी रही।

दाई फिर हँसी, 'चाची के हाथ का एक बार खाकर अपना धरम खा खो चुकी। जो खो गया उसे अब कहाँ ढूँढेगी? और अब तक नहीं खोया गया होगा तो अब कहाँ खोवेगी? अब तो मन पक्का करके पी जा।'

नीमा बात बदलने के अन्दाज मे बोली, 'अच्छा हुआ उसने ब्याह नही किया, नही तो मेरी बेटी की जिन्दगानी खराब हो जाती। मतई की

धोती धोते-धोते मर जाती। तू तो जानती है चाची, जिसकी माँ उसका बाप। जहाँ तक मेरी बात है, मेरे मारे ही मेरे बच्चों का कोई हाल नहीं।'

दाई थोडा सँभलकर बोली, 'एक बात कहूँ, तू नाराज मत होना। मैं किसी की तरफदारी नही कर रही। पर जो बात मैने अपनी भतीजी को समझाई थी वो ही बात मैं तेरे से कह रही हूँ। एक बेटी की माँ दुनिया की सब बेटियों की माँ बन जावे है। तू यह समझ ले तेरी ही माँ तुझे अपना अंस समझकर कह रही है। बिटिया, इस दुनिया मे तो औरत धान का खुला खेत है उसका रखवाला या तो राम है या मरद। नही तो जिसका मौका लगेगा वो ही मुँह मारेगा। छोटी जात की औरत तो मुँह की मार झेल भी ले पर""वे तन को तन ही समझे हैं। तुम लोग तन को चाँदी सोना-समझो हो। वो घिस भी सके और ठंडे-गरम घुल-पिघल भी सके। मेरी तो यही सलाह है, तू ज्यादा ना सोचा समझा कर। ज्यादा पकाने पर चीज जल भी जावे है। तेरा पहला आदमी ऊँची जात का होके भी तुझे बुला रहा है। बिरादरी से बैर मोल ले रहा है। तू उसके पास निसाखातिर होके चली जा। तेरा खोया पेट भी मिल जायेगा और घर-बार भी। तेरा बेटा भी दुक्खम-सुक्खम पल जायेगा।'

नीमा चुपचाप सुनती रही। उसने चाय का गिलास उठा लिया। पीने को हुई तो उसकी नज़र फिर बाहर चली गई। रज्जन पेड़ के पास पहुँच गया था। वह गिलास उठाये-उठाये ही दौड़ गई।

रज्जन को लेकर लौटी तो बोली, 'चाची, बस यही डर है, बड़ा बदलखोर है। सब कसर निकालेगा। रज-रज के बदला लेगा। अब मेरे तन मे उतनी जान है ना मन में। छलनी हो गये।'

'बिटिया रानी, अभी तू कौन सुख भोग रही है जो उसके घर में जाकेर खतम हो जायेगा!' हँसकर बोली, 'तन का मारा मरता नहीं और मन का मारा बचता नही। वो मारेगा भी तो कितना मार लेगा। बिना घर-बार के, बाहर के लोग तन भी मारेंगे और मन भी। तू कहाँ भागी फिरेगी। मुसीबत में तिनका सहारा हो जाये और नाव

डुबा देवे है। बिटिया, तू मिला-मिलाया सहारा क्यों छोड़ रही है ?'

रज्जन रोने लगा। नीमा ने उसे फिर छोड़ दिया। वह बाहर की तरफ भागने लगा। नीमा बोली, 'चाची, रज्जन को देख-देख के तो उसकी आँखों मे खून छिड़का करेगा। मुझे मार-मार के ही उसका कालजा ठंडा हो तो मैं सह भी लूं पर जब वो इस निर्दोष को मारेगा तो तन से ज्यादा मेरा मन टूटेगा।'

वह फिर हँस दी 'अरी पगली, घर के बिल्ली-कुत्तों से मोह हो जावे है, ये तो बच्चा है। बच्चा तो चाहे किसी का भी हो, प्यारा ही लगे। तू कह तो मैं उससे बात कर आऊँ। जो गुजर गया उसे गुजरा न समझ। अपना घर-बार देख, बाल बच्चों को पाल। ये तो वो भी जाने है ये तेरे दूसरे मरद से है। सोच-समझकर ही तुझे रखेगा।'

नीमा चुप हो गई। रज्जन फिर उस पेड़ तक पहुँच गया था। वह दूर से छोटा-सा लग रहा था। लुढ़कता-पुढकता दौड़ रहा था। नीमा उसे पकड़ने के लिए फिर उठकर गई। वह उसे देखकर और दौड़ने लगा। वह उसे छाती से चिपकाकर बोली, 'तूने ही मुझे साँसत में डाल दिया रे। तुझे लेकर भिखारी बन जाऊँ या""क्या करूँ ?' उसकी आँखें छलछला आई। रज्जन हँसने लगा।

वह लौटकर बोली, 'अच्छा चाची, जैसा तुम ठीक समझो। मैं तो ऐसी नाव पर बैठी हूँ जिसे डूबना ही है। अब तो ना घर रहे का भाग पता ना बाहर रहे का। यही समझ लूंगी—सिर पर छत है, मेंह-बूंदी से तो बचत होगी।'

दाई आशीर्वाद देने के अन्दाज मे बोली, 'बिटिया, तूने मेरी बात मानी है, भगवान तेरी जरूर सुनेगा। तू अभी नही जानती, जब बेटी-बेटे की ब्याह-शादी कर लेगी तब समझेगी। एक ही घर बसाकर माँ-बाप को लगता है एक नई दुनिया बना दी। टूटा घर बस जाय तो अपने को बिरमा ही समझने लगे हैं। मैं अभी जाती हूँ, राम ने सुन ली तो शाम तक तुझे तेरे घर पहुँचा दूंगी। देखियो तेरी बछिया-सी बेटी तुझे देख-कर कैसी दौड़ी चली आवेगी।'

नीमा चुप रही। पैर के अँगूठे से फर्श की कच्ची जमीन उकेरती रही।

रज्जन फिर बाहर की तरफ़ जाने लगा तो वह उसे गोद में लेकर बाहर निकल आई। बाहर पूरी तरह दिन का चांदना था। सूरज धीरे-धीरे चारो दिशाओं में पसरता जा रहा था। जहाँ उसकी सीधी किरणें नहीं पहुँच पा रही थी वहाँ प्रकाश उँडेलकर प्रभाव जमा रहा था। उन जगहों को छोडकर जिन्होंने किसी भी रूप में सूरज का आमना-सामना करने की कसम खा ली थी, कोई भी कोना सूरज की अपरोक्ष या परोक्ष उपस्थिति से बच नहीं पाया। कहीं किरणें बनकर, कहीं उनका चाँदना बनकर—किसी न किसी रूप में मौजूद ज़रूर था। नीमा को खुले दिन के बीचो-बीच खड़े हुए भी अँधेरे में ना देख पाने वाली बेचैनी थी।

नीमा को लगा वह शायद धीरे-धीरे उभर रही है। शायद कंगलों के उस निरंतर खिचाव से निकल सके। उसने लौटकर पूछा, 'तो चाची मैं जाऊँ?'

'कहाँ जायेगी?'

'धर्मशाला। वहीं सामान पड़ा है।'

'तू यहीं रह। रोटी-टुकडा बना, खा। अपने हाथ से बनाकर खायेगी तो मुझे भी बुरा नहीं लगेगा। वैसे रोटी तो जहाँ मिल जाय वही अच्छी। रोटी की कौन जात-बिरादरी। खैर, मैं बात करके आती हूँ। अच्छी तरह बाट-बट्टी हाड़ के आऊंगी। जिससे मेरे मरे पर तू मुझे कोसे नहीं कि चाची ने घर बनाने के नाम पर उल्टे बिगाड़ दिया।'

नीमा चुपचाप सुनती रही।

दाई ने अपने-आप ही कहा, 'वो तैयार हो गया तो तू उसी के साथ जाकर धरमसाला से अपना सामान उठा लइयो। उससे कहूँगी, पंडज्जी, मेरी बेटी को रिक्शा में बिदा करा के ले जा। एक धोती लाने को कहूँगी। तभी तो बिटिया अपने घर बिदा होकर जायेगी।' हर वाक्य पर हँसती जा रही थी।

नीमा बोली, 'चाची, तुम इतनी खुश न होओ। मेरा भाग तो मिट्टी की हँडिया है, पता है कब फ़ूट जाय! जब जो हो जाय, बात वही अच्छा।

सूरज ने फड़िये दुकानदार के भाव से दिन-भर अपने को खोला था।

उसी भाव से अब वह अपने को समेट रहा था। किरणें, धूप, प्रकाश एक-एक करके पेड़ों, पौधों, नदी, नालों, मैदान, गलियों, अटारियों और आँगनों पर से देखते-देखते हट रहे थे और उनकी जगह एक साये का खालीपन उतरता आ रहा था। दाई के घर के सामने हालांकि बहुत बड़ा मैदान था। ऊँचे दरख्त थे। नाला था। वहाँ से सूरज के लिए अपने को इतनी जल्दी समेट लेना आसान नहीं था। पर वहाँ से वह बड़ी होशियारी से मछुए के जाल की तरह अपने को खींच रहा था। यह बिल्कुल नहीं लग रहा था कि वक्त रहते समेटकर चला जायेगा।

नीमा बाहर ही खड़ी थी। बसेरे के लिए लौटते हुए पाखी रज्जन को इशारा करके दिखा रही थी। रज्जन जितने में अपनी गर्दन को हिला-डुलाकर देखने की स्थिति में लाता था इतने में पाखियों की डार निकल जाती थी। तोते तो और भी गोली की तरह जाते थे।

दिन पाथर की तरह डूब रहा था। अँधेरा ऊपर-ऊपर तैरता आ रहा था। नीमा को दाई की चिन्ता होने लगी थी। वैसे ही बुढ़िया है, कहीं उसकी मौत उसी के नाम ना लिखी हो। रास्ते में ही टरक न जाय। फिर वह किसके द्वारे जायेगी। उसके ना रहने पर तो सारे ही द्वार बन्द हो जायेंगे। तब वह क्या करेगी? कहीं उसके भाग में कंगली ही बनना ना लिखा हो? उस मुंशी ने नाराज होकर उसका ताला ना तोड़ लिया हो? यही अच्छा है रुपया अपने साथ लायी है। रुपया जाते ही तो वह सौ कंगलों की कंगली हो जायेगी। अभी तो उसमें इतनी हिम्मत है कि दो-तीन महीने दुक्खम-सुक्खम काट दे। फिर तो पल-भर काटना भी मुश्किल हो जायेगा। आदमी के बाद पैसे का ही सहारा है। आदमी और पैसा दोनों ना रहें तो अकेली औरत को कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

नीमा उस पेड़ तक गई जिसके नीचे वह सबेरे आकर खड़ी हुई थी। रज्जन दिन-भर में दो चक्कर लगा आया था। वह सिरस का पेड़ था। घना और मोरपंखी की तरह कटी छोटी पत्तियों वाला। पत्तियाँ पीली होकर गिर रही थीं। लोग लोटे ले-लेकर दिशा-मैदान के लिए शाम का नम्बर लगाने लगे थे। बेपर्दगी उभरनी शुरू हो गई थी।

बढ़ते हुए अँधेरे में दाई की धुंधली-सी हिलती आकृति दिखलाई

पड़ी। वह झुकी हुई अपनी जान में तेज़ी से चल रही थी। उसके पीछे-पीछे एक आदमी था। नीमा झपटकर कोठरी में चली आई। उसे घबराहट होने लगी। हो सकता है वही हो। उसे क्या करना होगा? उसने पूरा एक गिलास पानी पी लिया। उसे पानी पीते देख रज्जन भी पानी माँगने लगा, 'माँ, मम्म!'

नीमा ने थोडा-सा पानी चुल्लू मे लेकर पिला दिया। नीमा को फिर लगा, उसका गला सूख रहा है। पाँव पसीज आये हैं। जहाँ वह खडी थी वहाँ उसके पाँव का गीलापन उभर आया था। शरीर में एक बेसुरा इकतारा बज रहा था। उसने किवाड उढका दिया। किवाड़ की ओट से देखा। वे लोग काफ़ी नज़दीक आ गये हैं। उसे अपना साँस हल्का-हल्का उखडता हुआ-सा महसूस हुआ। कान गर्म हो गये। वह तब तक ताकती रही जब तक वे लोग दरवाज़े के सामने आकर नही रुक गये। उसके दिमाग मे आया, मना कर दे—वह नही जायेगी।

दरवाजा धकेलकर दाई अन्दर आई तो उसका साँस नीमा से कई गुना फूला था। वह पीठ सीधी करते हुए दो पैरों पर खडे कुत्ते की आकृति बनाकर खड़ी हो गई और कुछ देर खडी रही। फिर वही से बोली, 'पंडज्जी, मैं अभी खाट लाती हूँ। बड़भाग जो हमारी कुटिया पर आये।'

दाई खटोला निकालने लगी तो नीमा ने उससे लेकर बाहर धकेल दिया। बाहर से पंडज्जी ने पकड़ लिया। नीमा को एक अजीब सनसनी-सी महसूस हुई।

नीमा ने फुसफुसाते हुए पूछा, 'कहाँ चली गई थी, चाची?'

वह हँसकर बोली, 'पहले पंडज्जी मिले नही, तो मैं अपने बड़े बेटे के घर चली गई। उनका मन तो मान जावे है मेरा ही मन बस मे नही। बहुत चाहूँ मन बस में हो जाय। फिर सोचूँ कि काहे के वास्ते, जब तक उनकी जरूरत थी वे मेरे पीछे-पीछे लगे फिरे थे। मैं बाहर ही बाहर रहूँ थी। अब मेरी जरूरत है तो मैं पीछे-पीछे लगी फिरूँ हूँ। उन्हे फ़ुरसत नही। बेटा-बेटी को तो यह बिस्वास रहे है—माँ तो बुढ़ापे में किसी की हो नही सकती। पर माँ-बाप के वास्ते तो बेटा-बेटी पराये हो

ही जावें। माँ-बाप के मोह की भी अजीब माया है, पहले अपने हाथों खो देते हैं, फिर उन्हें पाना चाहवें। बेटी, हँसते गाल नहीं फूलते।'

नीमा कुछ समझ नहीं पा रही थी क्या कहे। दाई ने ही कहा, 'जा बिटिया, तेरा घरवाला लेने आ गया। तो मैं सुहाग गा दूं।' और खिल-खिलाकर हँस दी।

रज्जन नींद मे आ गया था। वह उसे गोद में लिये थी। लिटाकर घबरायी-सी आवाज मे बोली, 'एक मन कहता है ना जाऊँ। भाग के नाम पर जिन्दगी टेर कर दूँ।। आदमी अपनी दुर्गत से ही डरता है। दुर्गत होनी है। कहीं कम दुर्गत है, कहीं ज्यादा, यही समझने को रह गया। सबसे कम दुर्गत जमना मैया की गोद मे है। आदमी तो जिन्दा को खाता है, जमना मैया की सेना मरे पर खाती है।'

'अरी बिटिया, इतनी ही देर मे सिर से चल के तेरा दिमाग तलवे में पहुँच गया। किसी ने टोटका कर दिया क्या? जा अपने घर। अपना ही घर, घर होवे है। घर से बाहर होते ही आदमी दो कौडी का हो जावे।'

'पर…'

'पर-वर कुछ नही। मैं सब बाट-बट्टी हाड आई। इनसे कह दिया, पंडज्जी, ये पहले भी तुम्हारी अतगी के मारे गई था। तुम फिर मार-पीट करोगे और इसका तन खाओगे तो फिर तुम जानो। प्यार से मिल-जुलकर रहो। आदमी का मन मिला हो तो तन भी मिल जाता है। मन न मिले तो तन का क्या अचार डालोगे?'

नीमा के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। धीरे से बोली, 'इन्होंने क्या कहा?'

'देख बिटिया, थोड़ा तुझे भी निभाना पड़ेगा। पंडज्जी का कहना भी ठीक है। तुम लोगों की जात मे एक बार दूसरे के घर बैठे पर वापिस घर मे नहीं रखते। पहले तो दूसरे के घर बैठते ही नहीं। पंडज्जी तुझे वापिस ले रहे हैं। सारी बिरादरी और घर-भर से दुसमनी पालेंगे। तुझे भी उनकी पत रखनी पड़ेगी। वे सारे जग से बुरे बन जायें और तू अपनी मनमानी करे यही बात तेरे सोचने की भी है। ये

बात मैंने उन्हें भी समझा दी कि वो भी तुम्हारा ही सहारा तककर आयेगी। तुम ही उसका मन दुखाओगे तो उस बेचारी का कौन बैठा है! तेरे बेटे की बात भी कह दी।'

बाहर से पंडज्जी पहले तो खँखारे, फिर पूछा, 'चाची, मैं रुकूँ या जाऊँ?'

नीमा तुरन्त बोली, 'देखा, कैसा दिमाग है!'

'पंडज्जी, बिदा कराने आये हो, माँ को बिदा करने मे कुछ देर तो लगेगी।'

'हाँ, जरा अच्छी तरह समझा देना। इसको और इसके बच्चे को इसी वास्ते लेने आया हूँ कि रोटी-टुकडे और पानी-पत्ते की जरूरत है। बिटिया बड़ी हो रही है। उसकी भी देखभाल की उमर है। और यह भी साफ बता दूँ, अपना शरीर भी साथ है। जब दूसरे के साथ रहकर बेटा जन सकती है तो मेरे अन्दर कौन कमी है? बुरा मानने की बात नही। सीधी-सच्ची बात है।'

नीमा के आँखों में आँसू आ गये। धीरे से बोली, 'देखा चाची, यह सब कौन सहेगा? जब अभी से इन्होने ताने देने शुरू कर दिये, वहाँ तो घन चलायेंगे, घन। अब मुझमें इतना दम नही रहा। मैं भीख माँग लूँगी पर ये सब नही सहूँगी। कह दो जायें।'

'अरी, दुनिया अपने बच्चों से मिलने को बड़ी-बड़ी बिपदा उठाती है। हजार-हजार जतन करती है। तू जाके देख तो सही। भीख तो फिर भी माँग सकती है।'

'इनकी बात सुनकर तो मेरा कालजा छलनी हो गया। हर वक्त रज्जन के बाप को कोसेंगे। रज्जन की और मेरी हड्डियाँ भी तोड़ेंगे। मेरे लिए तो इधर कुआँ, उधर खत्ती। कहाँ भंरे मे जाकर गिर जाऊँ! बिटिया तो साल-दो साल की, फिर अपने घर-बार की हो जायेगी। इसे तो अभी पालना-पोसना है। मेरे लौटकर जाने पर उसके ब्याह-कारज को भी भाँजी लग जायेगी।'

पंडज्जी बाहर से बोले, 'तू इसी बात से समझ ले, मैं सब-कुछ जान-कर ही तुझे लेने आया हूँ। फिर भी अगर तू यही समझती है कि तेरे

बिना मेरा काम नहीं चलेगा तो चाहे जहाँ जा। अगर तुझे मेरे साथ रहना है तो जैसे कहूँगा वैसे ही चलना पड़ेगा।'

'चाची, तुम मना ही कर दो।

पंडज्जी वहीं से बोले, 'तो मैं जा रहा हूँ चाची, तुमने कहा तो मैं चला आया। मैं तो समझा था तुम इसके दुख-सुख की साथी हो, तुम्हारी बात मानेगी। पर यह तो तुम्हारी भी नहीं मान रही। पता नहीं काहे का इतना घमंड है। ये तो मेरी भलमनसाहत है, इतने दिन चुप बैठा रहा। नहीं तो इसके भी और इसके आदमी के, दोनों के हाथों में हथ-कड़ी डलवा देता। चुटिया खींचकर मारता लाता सो अलग।'

नीमा जोर से बोली, 'कह दो, मुझे नहीं जाना इनके साथ। इन्होंने जितना पानी मेरी हड्डियों में दिया है उतना तो कनागतों में पितरों को भी नहीं दिया जाता।'

दाई जमीन पर बैठ गई और ड्योढ़ी पर खिसककर बोली, 'मैं तो चाहूँ थी, घर विरान हो गया, किसी तरह फिर बन जाय। मन जुड़ा हो तो तन का बिगाड़ भी निभ जावे है। पर तुम दोनों का तो मन ही बिगड़ा हुआ है। मैंने तो अपनी भतीजी को भी यही समझाया था और अपने मन को भी। घर की खैर-खबर लो। जग भी घर से ही है। घर बिगड़ गया तो जग क्या सधेगा!'

पंडज्जी तमककर बोले, 'मुझे कहती हो! मैं तो भाई-बिरादरी के सामने अपना मुँह काला करके लेने आया हूँ। सोचा, चलो एक बार गलती हो गई। अब सँभल जायेगी। मुझे कुछ ना होता तो मैं इसके किये को काहे काली कंबली बनाकर ओढ़े घूमता। सारे के सारे मेरे मुँह पर थूकेंगे। मुझे इसे समझाने का भी हक नहीं। ऐसी जबरदस्ती तो कहीं नहीं देखी। मैंने तो अपना मन समझा लिया था। जब राजा रामचन्दर भगवान ने राजा रावन के घर रही सीता मैया को रख लिया तो तू किस खेत की मूली है! जो एक काम राजा कर लेता है वो तो प्रजा के लिए नियम हो जाता है। पर ये सती-सावित्री तो ऐसे बात कर रही है जैसे मैं ही कहीं मुँह काला करके आया हूँ। इन्सान अपनी कमी समझकर ही सुख पा सकता है। मेरा क्या जहाँ इतने साल इसका मुँह

नहीं देखा, वहाँ बिना देखे ही काट लूँगा। पर कहे देता हूँ मेरा भी ब्रह्म-वाक्य है, मेरे बिना इसका निस्तार नहीं।'

दाई हथेली पर माथा रखकर बोली, 'मैं तो तुम दोनों के बीच में जीभ हो के फँस गई। इधर हिलाऊँ तो कटे, उधर हिलाऊँ तो कटे। अपनी बेटी को ही समझाना पड़ेगा। औरत जात है। फलने-फूलने के वास्ते तो बेल भी पेड़ पर चढ़े है। औरत को मरद के सहारे चलना ही पड़ेगा। जमीन पर तो बेल पनपने से रही। कोई पैरों रौंधेगा। कोई दाँतों काटेगा। तू भी समझदार है, भला-बुरा समझ ले। मैं तो चाहूँ कि तुम दोनों का टूटा घर बन जाये।'

'हाँ, तू ही देख ले चाची, इनकी बातें सुन के फैसला कर। जैसी ये बात कर रहे हैं उससे तुझे लगता हो कि घर ले जाकर ये हम दोनों से बदला नहीं लेंगे तो मैं चली जाऊँ। मैंने पहले ही कह दिया मेरे तन में इतनी जान नहीं कि इनकी हर बखत की चाह पुगाती रहूँ। कभी-कभार कोई बात हो गई तो हो गई। गाँव के गोहरे की तलैया तो हूँ नहीं, आते-जाते जब चाहे घूँट भर ली। मुझे इनकी सेवा करने में एतराज नहीं, जी-जान से करूँगी। पर मैं यह भी नहीं चाहती कि मुझे और मेरे बच्चे को जब ये चाहे रुई की तरह धुनक दे।'

पंडज्जी खड़े हो गये, 'अरे कौन हरामजादा धुनक रहा है। अपने मन की ना कहूँ क्या? या गले में रस्सी बाँध लूँ! जो आग लगी है उसे ना पटेलूँ। जिस साँप को मैंने इतने साल अपनी छाती पर खिलाया है उसकी फुफकार तू भी तो सह। या मीठा-मीठा गप्प और कड़वा-कड़वा थू। अरे मुझे क्या पड़ी है तुझे और तेरे इस शहजादे को धुनकने की। साल-छः महीने देखूँगा। ठीक तरह रहती है तो रहती है, नहीं तो तू अपना रास्ता ले। मैं अपना रास्ता लूँ। ना मैं तेरे रास्ते मैं आऊँगा। ना तू मेरे रास्ते आना। इस शर्त पर चलना हो चल, नहीं चलना हो तो मैं अपने घर खुशी तू अपने घर राजी। ज्यादा ना झुका और ना झुक, नहीं तो मुँह के बल ही गिरेंगे।'

दाई अन्दर खिसक गई। धीरे से नीमा से बोली, 'बेटी, अब आना-कानी ना कर। चली जा। माँग को कोई चाँदी-सोने की तरह खरा-खोटा

नही कर सकता। ये तो बेटी गोता है। मिल जावे तो मोती ही मोती, नही तो मिट्टी। नही पटेगी तो भी सब-कुछ तेरे हाथ में है। भीख माँगना या जमना में डूबना। मेरा ही क्या पता है, तू उधर जाय और मैं इधर चल दूँ। मेरी जिन्दगी का कटोरा तो लबालब है, बस पलटे की देर है।"

नीमा पहले चुप रही, फिर बोली, 'चाची, मेरी समझ में कुछ नही आता। जो तू कहे वो करूँ। इस समय तेरे से बड़ा मेरा और रज्जन का हित चाहने वाला कोई नही। तू कहेगी तो मैं...'

'मैं तो बिटिया यह कहूँ कि तू चली जा। अपना घर-बार सँभाल। मरने से पहले मैं भी निफराम हो जाऊँ। मेरी दोनों धरम की बेटियों का उजड़ा घर बस जाय, बस! साबित कटोरे में तो सब कोई पानी पी लें। टूटे कटोरे को जोड के पानी पीना बडे इलम की बात है।'

दाई नीमा का जवाब सुने बिना ही बोली, 'पंडज्जी, ले जाओ। इसने बड़ा दुख भोगा। अब ज्यादा दुख ना देना। गहन भी सबको लगता है और बुरे दिन भी सबके आते हैं...पर भगवान ने यही अच्छा किया है कि ना गहन हमेशा लगा रहे और ना बुरे दिन बने रहें। जो गलतियाँ करता है उसे उसकी गलतियाँ अपने-आप तपा देवे हैं। ये बहुत तप ली। मैंने सास्तर-वास्तर तो देखे तक नही। पर इतना जानती हूँ, आग को पानी से ठंडा करा जा सके। घी से, या आग मे आग मिलाकर नहीं। अब इस आग के बुझाने के जुगाड़ करो।' नीमा से बोली, 'ला बिटिया, तेरी माँग भर के बिन्दी लगा दूँ। सूना माथा अच्छा नही लगता।'

बुढिया अन्दर कोठरी मे चली गई। नीमा अकेली चुपचाप खड़ी रही। उसके पैरों की उँगलियाँ अभी तक मुड़ी हुई थीं। दिये की बत्ती बीच-बीच में काँप जाती थी, तो वह भी खड़ी-खडी हिल जाती थी। इकसा जलती रहती थी तो वह भी स्थिर बनी खड़ी रहती थी। उसकी एडी और पैर की उँगलियाँ जमीन को पकड़े रहने के लिए पंजा बनने की कोशिश मे थी! पंडज्जी ने एक बार झाँक कर देखना चाहा। नीमा को लगा वह खड़ी-खड़ी सीता बन गई है और उसके पैरों के नीचे से

आग की लपटें निकलकर उसे लपेटे ले रही हैं।

दाई ने उसकी माँग में सिंदूर डालते हुए कहा, 'पता नहीं कब का बचा पड़ा है···तेरे चाचा को गये तो सालों हो गये। इसे तू लेती जा।'

नीमा चुप रही। हाथ बढ़ाकर चुपचाप डिबिया ले ली। नीमा ने सोते हुए रज्जन को गोद में सँभाला तो उसे अपने हाथ बेदम और ठंडे पड़ते-से लगे। नीमा एक मिनट दाई के सामने खड़ी रही फिर बाहर निकल आई।

दिये की रोशनी कुछ कम होती-सी लगी। दाई बत्ती सीकने चली गई।

पंडज्जी के पीछे चलते वह यह तय नहीं कर पा रही थी कि लौटने वाला रास्ता वही है जिससे आई थी या दूसरा है। उस पेड़ तक तो उसे सीमा लगी जिसके सामने वह एकाएक सवेरे जा खड़ी हुई थी। उससे निकलते ही रास्तों ही रास्तों की बाढ़ आ गई। वे सब अँधेरे के कारण एक-दूसरे में उलझते जा रहे थे। बीच-बीच में वह रज्जन को कसकर पकड़ लेती थी। माथे पर उसे खुजली-सी महसूस होने लगती। फिर ध्यान आता बिन्दी की सुरसुराहट है। उठा हुआ हाथ नीचे कर लेती थी।

पंडज्जी काफी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए चल रहे थे। बीच-बीच में घूमकर उसे देख लेते थे। वह अँधेरे रास्तों में धागे की तरह पिरती जा रही थी।

४

रात वह चुप रही। बार-बार उसे सोचना पड़ रहा था, अब फिर वह आदमी वाली हो गई है। घर उसे अनपहचाना-सा लगता रहा था। बिटिया भी रात उसे पहचानती ही रही थी। रज्जन को वह प्यार-भरी नजरों से देखती रही थी। जब बिटिया ने उसे प्यार किया था तो भी

रज्जन गून-मथान-सा लेटा प्यार कराता रहा था। वाकई वह सुन्दर निकल आई थी। नीमा की नज़र बार-बार उस पर जाती थी लेकिन नजर लगने के भय से हटा लेती थी। पंडज्जी ज़रा देर को बाहर गये तो उसने धीरे से कहा, 'बिटिया ये तेरा भाई है।'

उसने कुछ कहा नही। उसकी आँखो मे चमक आ गई और तिरछी नजरों से रज्जन को देखती रही। नीमा के मन में तब से यही जमा था कि बिटिया बछिया की तरह दौड़कर उससे लिपट जायेगी। नीमा के चिपटाने पर भी वह एकदम ठंडी थी। उसके ठंडेपन से उसके पाँव फिर पसीज आये थे।

लेटते समय नीमा ने धीरे से पूछा था, 'भैया को तेरे पास लिटा दूं।'

उसने रज्जन की तरफ़ देखकर गर्दन हिलाकर हाँ कर दी थी। लेकिन पंडज्जी बरांडे से ही बोले, 'दूसरी खटिया डाल दो।'

नीमा ने धीरे से कहा, 'बिटिया, तुम इसे अपने पास ही सुला लो। रात को तंग करेगा तो मैं ले लूंगी। मेरी रानी बिटिया।'

उसने बिना बोले फिर हाँ कर दी। नीमा ने रज्जन को उसी के पास लिटा दिया। पहले बिटिया रज्जन को आँखों ही आँखो से देखती रही फिर छूकर देखा। छू लेने पर उसने धीरे से प्यार किया। फिर वह उसे छूती भी रही और बार-बार प्यार भी करती रही।

पंडज्जी आये तो उन्होंने रज्जन को बिटिया के पास सोते देखा। बिटिया का हाथ उसके ऊपर रखा था। एक क्षण को खड़े देखते रहे फिर अपनी खाट पर लेट गये। उनका चेहरा अभी तक उलझा हुआ था। वे आँखें बन्द करके जल्दी-जल्दी पैर हिला रहे थे और बीच-बीच में हाथ मल रहे थे।

नीमा अपने अन्दर के अजनबीपन में और डूब गई थी। धर्मशाला का कमरा ज्यादा परिचित लग रहा था। जीने हू-ब-हू याद आ रहे थे। कंगले, उनकी बीडी-सिगरेटों के फ़ूल, चूल्हों की आग, ये सब उसके अन्दर बनी सुरंगों के सहारे लगातार उस तक पहुँच रहे थे। वह इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि आग और रोशनी जितनी बोलती और चलती

अँधेरा अपने-आपमें उतना गुम होता है। सोचते-सोचते उसका हाथ बार-बार रज्जन को छूने को बढ़ता था। रज्जन के पास ना होने से उसके अन्दर का अजनबीपन और मथ उठता था।

पंडज्जी काफ़ी देर तक चुपचाप लेटे रहे। नीमा बाद मे यही समझने लगी, सो गये है। उसे सोचने-समझने और सँभलने के लिए एक रात और मिल गई। इस बात से उसे अच्छा लग रहा था। वह पंडज्जी के बारे में सब बातें जानना चाह रही थी। आमदनी की बात खास थी। बढी है या वैसी की वैसी ही है ? घर की हालत उतनी खराब नही लग रही थी। पहले के मुकाबले घर में खाने-पीने का सामान काफ़ी था। कुछ ऐसा-वैसा सामान भी बढा था। खाटें बढ गई थी। शुरू-शुरू मे तो दोनों को ही ज़मीन पर सोना पडता था। हो सकता है कुछ सामान बिटिया की शादी के लिए भी जोडा हो। माँ के ना रहने पर बाप को ही माँ का फर्ज निभाना पड़ता होगा। खाना बिटिया बना लेती है। पहले बेब्याही लड़कियाँ कहाँ खाना बनाती थी और कौन उनके हाथ का खाता था ! पर अब तो जमाना बदल गया। बस खाना चाहिए। उसका मन हुआ वह उठकर बिटिया को कालजे से लगा ले और जाकर अपने दोनों बच्चों के बीच लेट जाये। इतना बड़ा सुख बडी मुश्किल से मिला है। उसकी छाती में हल्की-हल्की अकुलाहट भरने लगी। नीमा ने एक-आध बार पैर खाट से उतारने की कोशिश की लेकिन उतार नही पायी। कही पंडज्जी उठ ना जायें। वह रात आराम से काट देना चाहती थी। आज की रात उसे अपनी पुरानी काँचुली छोड़ने और अपने से मुक्त होने के लिए चाहिए थी। अभी तक पुराना सब-कुछ उसके चारों तरफ़ एक के बाद एक चुना हुआ था। उसे लगातार लग रहा था, उसका दूसरा आदमी भी है। वह और ज्यादा खुलकर उसके सामने आ रहा है। वह जिन पर्तों में लिपट गया था वे भी सब उतर गई। उसकी स्मृतियों ने उसे एक जीता-जागता इन्सान बनाकर उसके सामने खड़ा कर दिया था। उसकी आँखों से एक के बाद एक बहुत-से सवाल निकल-निकलकर एक संकला बनते जा रहे हैं।

रात उसके लिए भारी होती जा रही थी। नीमा बहुत चुप थी।

अन्दर तक चुप हो जाना चाहती थी। अपने बच्चों तक के पास जा॰ की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उसने अपने हाथो-पैरों तक के हिलने-डुलने को साध लिया था।

पंडज्जी एकाएक बोल पडे तो नीमा सहम गई। उसे लगा उन्होंने सब-कुछ देखा है। पडज्जी ने उसकी तरफ़ करवट लेकर पूछा, 'वह ढाबे वाला क्या बहुत अच्छा आदमी था ?'

नीमा ने धड़ साध लिया। वह चाहती थी उसे सोता समझकर वे चुप हो जायें। हो सकता है उसके बोलने से यह नई शुरुआत फिर बिगड जाय। उसने साँस धीमा कर लिया। इस तरह के सवालों के लिए वह अपने को बिल्कुल तैयार नही कर पायी थी।

पडज्जी ने हाथ बढाकर उसकी कलाई पकड़ ली। यह पकड़ना बिल्कुल दूसरी किस्म का पकड़ना था। पंडज्जी मुट्ठी को कसते हुए बोले, 'झुरा गई हो।'

नीमा परेशान हो गई। उन्होने फिर पूछा, 'क्या ढाबेवाला बहुत अच्छा आदमी था ? वेद-शास्त्र जानता था ? पतरा-पोथी बाँच लेता था ? या पूरा मिस्सर ही था ?'

उसने अँधेरे मे गर्दन हिला दी। फिर उसे ध्यान आया उसका गर्दन हिलाना देख नही पाये होंगे। धीरे से बोली, 'ऊँ हुँ...।'

'फिर क्या लेने गई थी ? बेटा !'

नीमा को लगा पंडज्जी की मुट्ठी कसती जा रही है। कहीं वह मरोड ना दें। उसे लौटकर नही आना चाहिए था। उसका गला फँसने लगा।

'ये लौडा उसी ढाबेवाला का है ना ?'

नीमा को लगा, उसका रोना आकर भी फूट नही रहा है। उसकी बेचैनी बढती जा रही थी। अगर वह हाथ नही छुड़ायेगी तो उसका कम-से-कम हाथ तो सुन्न हो ही जायेगा। उसने ज़रा-सा अपनी तरफ को खीचा।

'चल, यही समझ लूंगा। एक बाँमन के बेटे को पाल-पोसकर पुन कमा रहा हूँ। पर तू इसे अलग सुलाया कर।'

नीमा धीरे-धीरे सिसकने लगी।

पंडज्जी बोले, 'देख तू फिर वही फैल भरने लगी। मैं ना तुझे मार रहा हूँ ना कुछ और कह रहा हूँ। एक बात समझा रहा हूँ। मैं तो समझा था ठोकर खा-खाकर कुछ अकल आ गई होगी। पर तू तो वैसी की वैसी ही है। नखरो!' फिर धीरे से कहा, 'चल इधर!'

नीमा चुपचाप बिना हिले लेटी रही। उसका साँस रुकने लगा। उसका दूसरा आदमी अन्दर से निकलकर फैलता हुआ-सा लगा। मन हुआ कि वह कह दे—देखो, वह खड़ा है। लेकिन वह बोली नहीं।

पंडज्जी उसी की खाट पर सरक आये, 'देख, मैं तुझे पूजा-पाठ के लिए नहीं लाया। खास इसी के वास्ते लाया हूँ। मेरी भी तो बात देख इतने दिन से वैसा का वैसा ही हूँ। चाहता तो कहीं भी मुँह काला कर सकता था···अब जो कहूँगा वो करना पड़ेगा। दुनिया-जहान की बद-नामी ले रहा हूँ तो कोई परमारथ के लिए नहीं, अपने और तेरे लिए। इस नाग को छाती पर पालूँगा तो इसलिए नहीं कि जो मैं कहूँ तू उसके खिलाफ करे। एक मौका और है, अपने को सँभाल ले। अब वो मास्टरनी भी नहीं···वो ना होती तो मेरा घर तब भी ना बिगड़ा होता। तेरी मजाल थी जो तू इस तरह छोड़कर चली जाती?'

नीमा अपना एक-एक साँस गिन रही थी। उसने एक बार उठना चाहा तो पंडज्जी ने दबा लिया। बोले, 'तू मुझे इस बात का जवाब दे दे कि आखिर तू मुझसे क्यों भागती है? मैं उससे बदसूरत हूँ? कम पढ़ा-लिखा हूँ? क्या हूँ? या उस जितनी जान नहीं···। मेरा जिगरा देख। ढाबेवाले के पास रही फिर भी घर में ले आया। नहीं तो खोटा सिक्का जी-जानकर कौन घर में लाता है! अब तो सतवन्ती ना बन। चल आ। अपने आपे में रह। पत्नी का धरम निभा। उस दिन तेरे घर गया, तूने दरवाजा नहीं खोला। सब-कुछ भुलाकर विधवा को सधवा बना दिया। चल···आ···'

नीमा बड़ी मुश्किल से कह पायी, 'ऐसी बातें मत कहो।'

'अच्छा नहीं कहूँगा, पर तू भी तो कुछ समझ।'

नीमा ने अपने हाथ ढीले छोड़ दिये। शरीर से भी सारा कसाव

खींचकर सिर में धर लिया। आँखें बन्द करके चुपचाप लेट गई। वह मनमानी करने पर उतारू हो गया। नीमा को लगा वह धीरे-धीरे मरती जा रही है। थोड़ी देर मे पूरी तरह मर जायेगी। वो ऐसा बिलकुल नही था। वही फिर उसके अन्दर जीने-जगने को हुआ। उसने इधर-उधर सिर हिलाया।

पंडज्जी ने पूछा, 'तू क्यों चली गई थी ?'

नीमा ने होंठों को कसकर बन्द कर लिया। लेकिन उसका मरना जारी रहा। बाद में भी कुछ देर तक वह मरी पड़ी रही। उसे लगता रहा सड़क कूटने वाला इंजन उसके उपर से उतर गया है। वह काफ़ी देर बाद जी।

सवेरे तार ढीले थे। किसी तरह का कोई स्वर नही निकल रहा था। वह उन्हें कसना चाहती थी। लेकिन उनमें और अधिक ढीलापन आता जा रहा था। सवेरे जब उठी तो पंडज्जी उठ चुके थे। वे ज़ोर-ज़ोर से जाप करते हुए अपना काम जल्दी-जल्दी निबटा रहे थे। जल्दी-जल्दी निबटकर मठिया जाना था। पूजा करने वाले और जमना से नहाकर लौटने वाले पाँच बजे से चरणामृत और प्रसाद लेने आने लगते थे। कोई-कोई पैसे भी चढ़ा देता था। सवेरे के रेले के बाद दूसरा रेला शाम को आता था। दिन-भर मठिया खाली रहती थी।

बिटिया भी उठ गई थी। रज्जन काफ़ी बाद में उठा। बिटिया उत्तेजित और प्रसन्न जरूर थी पर बोल नहीं रही थी। नीमा ने उसे प्यार करते हुए कहा, 'बिटिया, माँ से नहीं बोलेगी ?'

पंडज्जी पीछे से आकर बोले, 'अब कह रही है···तब ध्यान नहीं आया !'

नीमा ने उनकी तरफ देखा। नीमा को उनकी आँखों में कसाई का खाडा उभरता-सा लगा। बिटिया माँ से सट गई। गर्दन नीची किये हुए पूछा, 'माँ अब रहेगी ना ?'

नीमा बोलकर कुछ नहीं कह पायी। सिर्फ गर्दन हिला दी।

उसने फिर पूछा, 'भैया भी ?'

वह फिर गर्दन हिलाना चाहती थी। लेकिन पंडज्जी 'भैयाऽऽ' दोहराकर हँस पड़े। इस बार नीमा ने गर्दन उठाकर उनकी तरफ़ बिल्कुल नहीं देखा! हँस लेने के बाद वे फिर अपना मन्त्र बोलने लगे। पर उसके स्वर में उत्तेजना आ गई।

नीमा उठ गई। बिटिया भी उसके पीछे-पीछे चली गई। नीमा को बार-बार लग रहा था वह तूफान में खड़े एक बहुत बड़े पंडाल के बाँसों की तरह हो गई है। उसके पाँव बार-बार उखड़कर ऊपर उठ जाते है। हर बार वह खींच-तानकर फिर टिकाती है।

बिटिया ने नजदीक जाकर पुकारा, 'माँऽ···!'

नीमा ने उसे नज़दीक खींच लिया। बड़ी देर बाद पूछ पाई, 'रोटी तू बनाती थी?'

बिटिया ने हाँ कर दी। नीमा ने उसके दोनों हाथ अपनी हथेलियों में भर लिये। उन्हें सहलाती रही। पंडज्जी की पूजा की घंटी टुनटुनाने लगी।

'तेरे बाबू तुझे मारते तो नहीं थे?'

धीरे से कहा, 'हूँऽऽ।' फिर रुककर बोली, 'बगल वाली कहा करती है तेरा बाप बड़ा मरखना है। तेरी माँ भी इसीलिए गई।'

गुज्जन रोने लगा। बिटिया दौड़ गई। पंडज्जी पूजा करते-करते उसे डाँटने लगे, 'चौप्प बे। मलेच्छ कहीं का। पूजा करते समय रोता है।'

नीमा जाकर गोद में उठा लायी। वह थोड़ी देर तक रोता रहा। चिड़ियाँ आने लगी थी। बिटिया हाथ पकड़कर उसे चिड़िया दिखाने लगी।

पंडज्जी पूजा करने के बाद कुर्ता पहनते हुए उठे तो बोले, 'मन्दिर जा रहा हूँ। तू रोटी बनाकर तैयार रखना। एक बात और समझ ले, इस लड़के को चौके में मत जाने देना। मैं बाहर से ताला लगाये जा रहा हूँ। उधर की खिड़की खुली है, वहीं से चीज-वस्त खरीदनी हो तो खरीद लेना। खिड़की-विड़की में जाकर ज्यादा मत बैठना। वैसे ही कट गई है, रही-सही और कट जायेगी।'

नीमा ने मुड़कर जोर से पूछा, 'बाहर से ताला बंद करके जाओगे ?'

'और क्या तुझे रास-लीला मनाने को खुली छोड़ जाऊँगा ?'

नीमा को अपने पाँव फिर ज़मीन से उठते हुए महसूस हुए। उसे लगा, अब ऊपर ही ऊपर तैरती रहेगी। फिर बोली, 'मैं कोई चोर-उचक्की हूँ जो···'

'अब मेरा मुँह न खुलवा···लिए तो घूम रही है सार्टीफिकेट।'

नीमा के गले से आवाज़ नहीं निकल सकी।

पडज्जी ने दरवाज़ा बन्द करने के लिए ताला उठाया तो नीमा बड़ी मुश्किल से कह पायी, 'ताला बन्द मत करो।'

वह सामने जाकर खड़ी हो गई।

पंडज्जी ने एक ज़ोर का कंटाप नीमा के रसीद कर दिया, 'हटेगी या नहीं। हरामज़ादी कहीं की···अब हज को चली है।'

रज्जन जोर-ज़ोर से रोने लगा। बिटिया भी धीमे-धीमे बिसुरने लगी और रज्जन को अपने से चिपका लिया। पंडज्जी बिटिया से चिल्लाकर बोले, 'हट अलग, बड़ी आई माई वाली। इस साले की भी हड्डी अलग कर दूँगा।'

नीमा का दम घुट-सा गया था। पर वह एकाएक बोली, 'अगर ये और मैं, तुम्हें इतने बुरे लगते हैं तो हमें चले जाने दो।'

'वो तो मैं जानता हूँ तू रहेगी थोड़े ही···तुझे बाहर की चाट जो पड गई है। इसीलिए ताला लगाकर जा रहा हूँ···इतनी जल्दी थोड़े ही छोड़ दूँगा ?'

पंडज्जी तेजी से बाहर चले गये। बाहर ताला डाल दिया। नीमा गिर-सी गई। घुटनों में सिर छिपाकर बिसुरने लगी। पहले बिटिया रज्जन को चिपकाये नीमा को देखती रही फिर उसे लेकर धीरे-धीरे माँ के पास आकर खड़ी हो गई। बिटिया कुछ दूर पर रुक गई। रज्जन लगकर खड़ा हो गया। बिटिया ने धीरे से पुकारा, 'माँ !'

नीमा से कुछ कहते नहीं बना। वह उसी तरह चुपचाप बैठी रही।

रज्जन ने अपनी भाखा में धीरे से कहा, 'माँ घर चल।'

बिटिया ने रज्जन को समझाना चाहा, 'भैया, यही घर है···हम

तुम्हारी दीदी हैं।'

रज्जा ने उसकी तरफ नाराजगी से देखकर कहा, 'नहीं, हमारा घर वहाँ है…बहुत दूर।'

दोनों बच्चे नीमा से सटकर बैठ गये। नीमा ने बच्चों को अपनी गोदी में समेटना चाहा पर रह गई।

निर्मल वर्मा	पिछली गर्मियों में
अमृता प्रीतम	दो खिड़कियाँ
कृष्ण बलदेव वैद	मेरा दुश्मन
गिरिराज किशोर	रिश्ता
गिरिराज किशोर	पेपरवेट
रामकुमार	समुद्र
निर्मल वर्मा	जलती झाड़ी
श्रीकान्त वर्मा	संवाद
गुरुबख्शसिंह	कागा सब तन खाइयो

कविता-संग्रह

कालिदास (वा. श. अग्रवाल)	मेघदूत
सुमित्रानन्दन पन्त	गीतहंस
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	कुआनो नदी
सरदार जाफ़री	प्यास की आग
शिवमंगलसिंह 'सुमन'	मिट्टी की बारात
फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'	शीशों का मसीहा
श्रीकान्त वर्मा	जलसाधर
रघुवीर सहाय	आत्महत्या के विरुद्ध
कैलाश वाजपेयी	तीसरा अँधेरा
राजीव सक्सेना	आत्मनिर्वासन
धूमिल	संसद से सड़क तक

संस्मरण

जगदीशचन्द्र माथुर	दस तसवीरें
पांडेय बेचन 'उग्र'	अपनी खबर

संस्कृति : दर्शन

बर्ट्रेण्ड रसेल	सुख की साधना
देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय	भारतीय दर्शन : सरल परिच
शान्ति जोशी	राधाकृष्णन का विश्व-दर्शन
शिवदत्त ज्ञानी	भारतीय संस्कृति
डा० एस० राधाकृष्णन	आधुनिक युग मे धर्म

लोकप्रियविज्ञान

गुणाकर मुले	भारतीय विज्ञान की कहानी